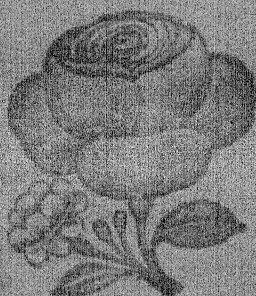
ओ३म्

श्रीमद्भगवद्गीता ।



विद्यानिधि ।

गीता ग्रन्थमाला का ४ चौथा सुमन ।

ॐ ओ३म् ॐ

त्रिमार्गगंगा-गीता ।

अर्थात्

गीता ज्ञानगंगा की त्रिवेणी

(संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेज़ी)

कर्मयोग के आधार पर

"कर्मणैवहि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्त्तुमर्हसि ॥"
(गीता । अध्याय ३ । श्लोक २०)

लेखक—
वेदान्ताचार्य स्वामी तुलसीराम मिश्र
विद्यानिधि, एम० ए०,
भूतपूर्व महोपाध्याय, आगरा कालिज, आगरा ।

प्रकाशन सहायक—
आगरा निवासी भगवद्भक्त
प्रथम संस्करण
[१००० प्रति] संवत् १९८३-सन् १९२६ [मूल्य श्रद्धा

॥ ओ३म् ॥

प्रकाशक—

गीता प्रचार समिति

लखनऊ व आगरा।

मुद्रक—

सत्यव्रत शर्म्मा

शान्ति प्रेस, मदनमोहन दरवाजा-आगरा

❀ ओ३म् ❀

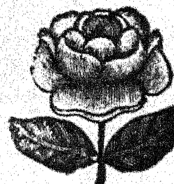


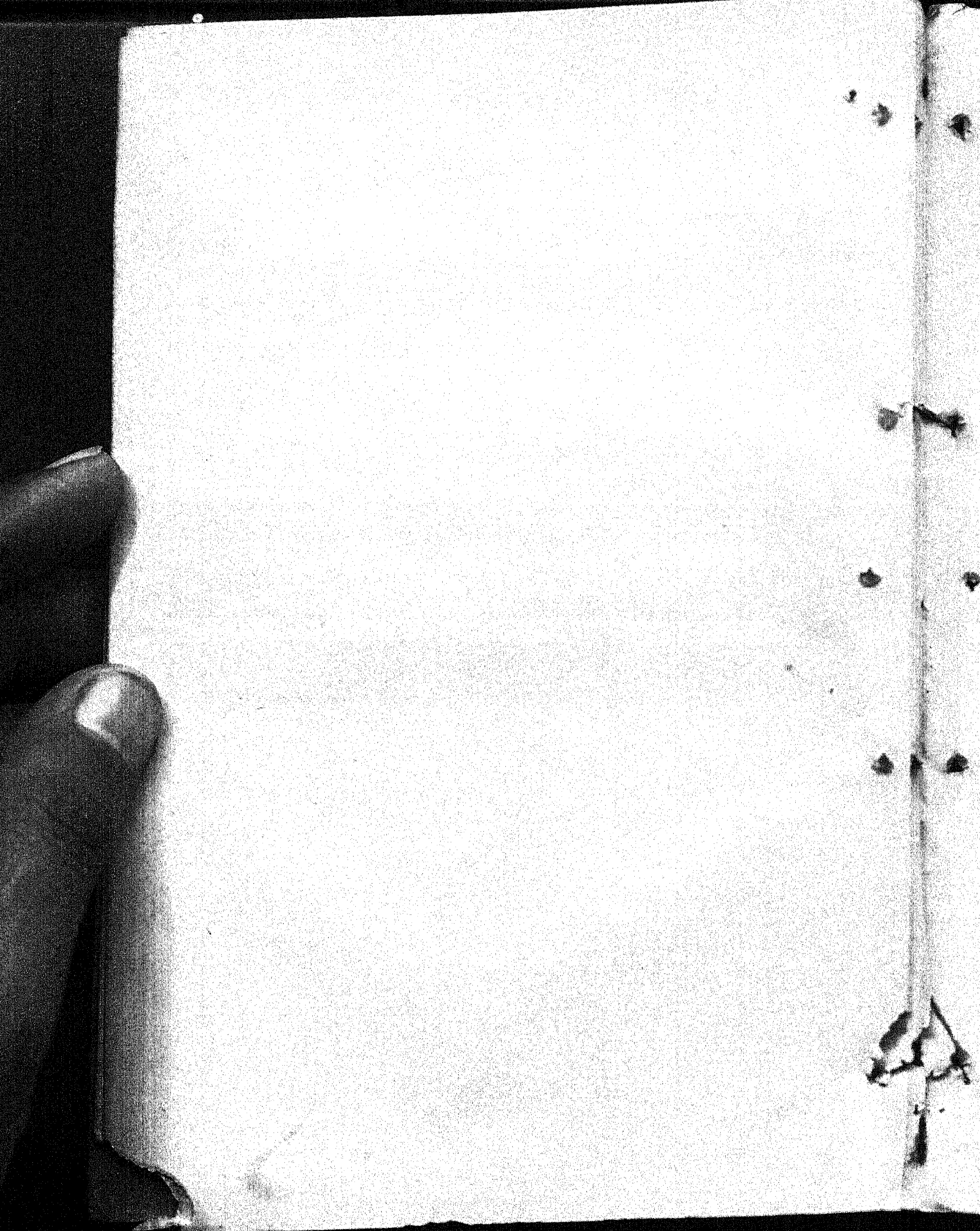
प्रकाशन सहायक

१—श्रीमान् बाबू अशरफ़ीलालजी, रईस व वकील, हरीपर्वत आगरा। १००० प्रति।

२—श्रीमान् कुमर गणेशसिंहजी, मैनेजर, युनाइटेड मिल्स, बेलनगंज, आगरा। १००० प्रति।

नोट—सम्वत् १९८१ में श्रीमान् बाबू प्रयागनारायणजी वकील आगरा, व श्रीमान् बाबू नारायणदासजी टंडन रईस माईथान, आगरा की सहायता से २००० दो हज़ार प्रतियाँ अँग्रेजी व हिन्दी की भी छप चुकी हैं। इस प्रकार आगरा निवासी भगवद्भक्तों की ओर से ४००० गीताएँ छप चुकी हैं।

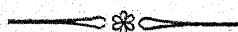




❀ ओ३म् ❀

भूमिका

(कर्मयोग के आधार पर)



पाँच हज़ार वर्ष के लगभग हुए कि योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने कुरुक्षेत्र की पवित्र रङ्गभूमि में महावीर अर्जुन को जो महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया था, उसका सारांश निम्नलिखित है—

"हे अर्जुन ! तू भय और हृदय की दुर्बलता को छोड़ दे। तू निर्भय होकर अपने क्षात्रधर्म का पालन कर। अपने धर्म में कोई गुण न हो, तो भी वह दूसरे के धर्म से श्रेष्ठ है। अपने धर्म में प्राण त्याग करना श्रेयस्कर है, दूसरे का धर्म भयदायक है। यदि तू मृत्यु के भय से युद्ध-क्षेत्र में पद-न्यास नहीं करता, तो यह तेरी भूल है। केवल इस शरीर का ही नाश होता है। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी और सनातन है। इसको शस्त्र काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकती। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतारकर नये धारण करता है, वैसे ही यह जीवात्मा जीर्ण शरीर को त्याग करके नवीन देह को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, हे अर्जुन ! जो तू इस धर्म-युद्ध में प्रवृत्त न होगा, तो तू अपने धर्म और कीर्ति को खोकर पाप का भागी होगा। सब लोग सदा तेरी अकीर्ति का कथन करेंगे और प्रतिष्ठित पुरुष की अकीर्ति मरण से अधिक क्लेशकर होती है। ये सब महारथी तुझे रण-भूमि से भयभीत होकर भागा हुआ समझेंगे। जो तुझे बड़ा समझते हैं उनकी दृष्टि में तू छोटा और तुच्छ हो जायगा। तेरे शत्रु नाना प्रकार की कहनी-अन-कहनी कहेंगे और तेरे बल और पुरुषार्थ की निन्दा करेंगे। बतला, इससे बढ़कर और क्या दुःख हो सकता है ?

हे अर्जुन ! जो तू युद्ध में मारा जायगा, तो स्वर्ग को प्राप्त होगा और जो जीतेगा, तो भूमण्डल का साम्राज्य भोगेगा। इस कारण युद्ध करने का निश्चय करके खड़ा हो जा। परंतु मनोनिग्रह और आत्मसमर्पण-द्वारा निष्काम भाव को प्राप्त होकर युद्ध कर, तेरा कल्याण होगा ।"

यह महत्त्व-पूर्ण उपदेश आज पाँच हजार वर्ष के व्यतीत होने पर भी हमारे लिये अमृतमयी महौषधि के समान परम लाभदायक प्रतीत होता है। यदि हम आज भय और हृदय की दुर्बलता को त्याग कर के खड़े होजायँ * और अपने अपने धर्म अर्थात् स्वधर्म का पालन करने लगें तो अब भी पृथ्वी पर कोई ऐसी शक्ति नहीं कि जो हम पर बलात्कार आक्रमण कर सके। परंतु जबतक हम भय और विषाद से मुक्त न होंगे हम त्रिकाल में भी उठ न सकेंगे और सदैव पादाक्रान्त रहेंगे। इसलिये इस समय हमारा मुख्य कर्त्तव्य यही है कि हम अन्य सब मार्गों को छोड़कर योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के उपदिष्ट मार्ग का आश्रय लें और अर्जुन-द्वारा समस्त भूमण्डल को आज्ञा भी यही दी गई है—

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥"

(गी० अ० १८, श्लो० ६६)

क्या इस उपदेश और इस आज्ञा का पालन करते हुए हिंदुओं में से कोई व्यक्ति वा जाति अधोगति को प्राप्त हो सकती है अथवा परतंत्र रह सकती है ? कदापि नहीं।

---

* इससे यह अभिप्राय नहीं है कि हम किसी पर आक्रमण करें क्योंकि "निर्वैरःसर्वभूतेषु" गीता का परम पवित्र सिद्धान्त है। पर अपने देश की और अपने धर्म की रक्षा करना भी तो परम धर्म है।

इस बात का भी स्मरण रखना चाहिये कि स्वराज्य-प्राप्ति और राष्ट्र-निर्माण के लिये चार साधनों की आवश्यकता होती है—१ आत्मज्ञान, २ आत्मगौरव, ३ आत्मसंयम और ४ आत्म-समर्पण। यह चारों साधन श्रीमद्भगवद्गीता में पूर्णरूप से उपदिष्ट हैं। इसलिये हे प्रिय पाठकवृन्द ! यदि आपको कर्मयोगी बनकर देश और जनता की सेवा करना अभीष्ट हो, तो इस धर्म-पुस्तक (गीता) का आश्रय लीजिये; क्योंकि "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।" और लोकसंग्रह के आधार पर देश और जाति का सङ्गठन कीजिये। आप निष्काम भाव से स्वधर्म का पालन भी कीजिये। यदि आप ब्राह्मण हैं, तो विद्या और धर्म का प्रचार कीजिये। यदि आप क्षत्रिय हैं तो अपने देश के शासन में मनुप्रणीत राजधर्मानुसार भाग लीजिये। यदि आप वैश्य हैं, तो गो-रक्षा और व्यापार-वृद्धि में व्यग्र हो जाइये और यदि आप किसी अन्य जाति से संबंध रखते हैं, तो सेवाधर्म का पालन कीजिये। ऐसा करने से आप शीघ्र उन्नति के शिखर पर पहुँच जायँगे। यही एक मार्ग है, दूसरा नहीं। इसलिये आप कर्मयोगी बनकर देशोद्धार कीजिये।

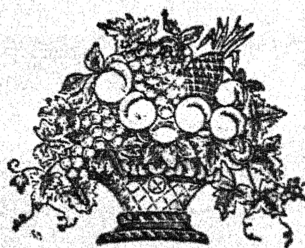
"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥"

(गी० अ० ३, श्लो० २०)

ओ३म् तत् सत्

कचहरीघाट आगरा
ता० २६–११–२६

तुलसीराम मिश्र
प्रधान मन्त्री—
गीता प्रचार समिति,
लखनऊ व आगरा।



❀ ओ३म् ❀

❀ आवश्यक निवेदन ❀

महानुभाव सज्जनो !

आज परमात्मा की असीम दया और भगवद्भक्तों और मित्रों की परम कृपा और सहानुभूति से जिन्होंने मुझे इस ज्ञानयज्ञ की अन्तिम पूर्ति में आर्थिक सहायता दी है यह मेरी चौथी गीता समाप्त हुई। मैं इन सब महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। गत चार वर्ष में मैंने श्रीमद्भगवद्गीता की १२००० बारह हज़ार प्रतियां बिना मूल्य बाँटी हैं। संवत् १९८० में पद्यात्मक ब्रजभाषानुवाद की पाँच हज़ार प्रतियाँ बाँटी गईं, और वे भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में पहुंच गईं। संवत् १९८१ में पद्यात्मक अँग्रेज़ी अनुवाद मुद्रित हुआ और उसकी २००० दो हज़ार प्रतियाँ इस देश में और अन्यदेशों में भी बटीं। *और संवत् १९८२ तथा १९८३ में संस्कृत-हिंदी गीता की ५००० पाँच हज़ार प्रतियाँ विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और हाईस्कूलों में बाँटीं गईं। ये सब पुस्तकें बिना मूल्य ही बटीं। एक पुस्तक भी मूल्य लेकर नहीं दी गई। परन्तु इस पुस्तक की १००० प्रतियों पर मूल्य लगाया गया है और १००० प्रतियाँ बिना मूल्य रहेंगी।

इसके दो कारण हैं—

१. पहिला कारण यह है कि बहुतसे सज्जन जो गीताके प्रेमी हैं और उसके पढ़ने की हार्दिक इच्छा रखते हैं निर्धन होने के कारण यथोचित दान नहीं दे सकते। और बिना मूल्य भेट रूप में पुस्तक को स्वीकार भी नहीं करते। उनका कथन है कि "यदि ये पुस्तकें मूल्य देकर ले सकते तो अवश्य ले लेते"।

---

* थियसाफ़िकल कनवेनशन द्वारा भूमण्डल के दूरदेशों तक पहुँच गईं।

२—दूसरा कारण यह है कि अभी तक गीताप्रचार समिति का कोई स्थायी कोष भी नहीं है। इस सेवक को निरन्तर देशाटन करना पड़ता है और फिर भी कठिनतासे उद्देश्य की पूर्ति होती है।

इन कारणों से यह निश्चय हुआ है कि प्रतिवर्ष के आरम्भ में एक ऐसी गीता मुद्रित कराई जाया करे जो अनुपम और अद्वितीय हो और उस पर **एक मुद्रा** मूल्य रख दिया जाया करे। और जो उसकी बिक्री से आय हो उससे अन्य प्रकार की गीताएँ मुद्रित करा कर बिना मूल्य बाँटी जाया करें।

"यह त्रिमार्गगंगा गीता अनुपम, अद्वितीय, अद्भुत और महत्त्वपूर्ण है।" विद्वानों की सम्मति है कि ऐसी गीता पहिले कभी इस देश अथवा किसी अन्य देशमें दृष्टिगोचर नहीं हुई। "यह वास्तव में गीताज्ञानगंगा की त्रिवेणी ही है"। इसमें तीन भाषाओं का पद्य है, संस्कृत + हिन्दी + अँगरेज़ी। यह गीता हिन्दूमात्र के घर में रहनी चाहिये। जो महाशय १) एक मुद्रा व्यय करके इसे लेंगे वे गीताप्रचार समिति के साधारण सभासद, देशमाता के सेवक, भगवान् देवकीनन्दन के भक्त और गीताधर्म के सहायक समझे जायँगे।

इस के अतिरिक्त वर्षभीतर जो गीतासाहित्य मुद्रितहोगा वह इस गीता के खरीददारों को बिना मूल्य भेटरूप अथवा उपहाररूप में प्रदान किया जायगा। इस गीता की दो हज़ार प्रतियों में से एक हज़ार पर ही मूल्य लगाया गया है।

आगरा
ता० २६-११-२६

निवेदक—
तुलसीराम मिश्र,
कचहरीघाट, आगरा।



त्रिमार्गगा-गीता

अर्थात्

गीता ज्ञान गंगा की त्रिवेणी

(संस्कृत-हिन्दी-अँग्रेज़ी)

छन्द बद्ध



अध्याय १

धृतराष्ट्र उवाच—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा।

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें एकठौर रनसाज।
संजय! ममसुत पांडुसुत कहा करत भये काज? ॥ १ ॥

Dhritarashtra said:—

1. On Field of Right, on Kuru's plain,
Gather'd together, for a fight,
What did they do, O Sanjaya,
My people own and Pandu's sons?

संजय उवाच—

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत्॥ २॥

संजय ने कहा।

लखि पांडव व्यूहित अनी दुर्योधन अधिराज।
वचन उचारयो जाइ तहँ जहँ गुरु द्रोण विराज ॥ २॥

Sanjaya said:—

2. Seeing the troops of Pandavas,
 Array'd in battle order, then,
 Duryodhan his preceptor sought,
 And unto him thus spake, O king!

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥ ३॥

हे गुरु! देखो यहि बड़ी व्यूहित पांडव सैन।
जाको थापक शिष्य तव द्रुपदपुत्र मतिऐन ॥ ३॥

3. Observe yon Pandu's sons' array,
 O teacher! ranged in battle form,
 By thine own pupil, Drupad's son,
 Possess'd of wisdom, Prince of men.

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमायुधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥ ४॥

परम धनुषधारी यहां भीमार्जुन सम वीर।
युयूधान वैराट अरु द्रुपद महारथ धीर ॥ ४॥

4. Heroes are here and bowmen great,
 Of Bhim and Arjun peers in war,
 Yuyudhana and King Virat,
 And Drupad of the mighty car.

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः॥ ५॥

धृष्टकेतु पुरुजित तथा काशिराज बलवान।
नरवर भट हैं शैब्य अरु कुंतिभोज चिकितान॥ ५॥

5. Dhrishtaketu, Chekitana,
Kashi's valiant Sovereign Prince,
Purujit and Kuntibhoja,
And Shaivya, too, leader of men,

युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥ ६॥

युधामन्यु विक्रान्त अरु उत्तमौज अति धीर।
द्रौपदेय सौभद्र सब महारथी बलवीर॥ ६॥

6. Yudhamanyu, the warrior brave,
And mighty Uttamaujas, too,
Subhadra's son and Draupadi's,
All of great cars and high renown.

अस्माकंतु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥ ७॥

हे द्विजवर! अब तुम सुनो सूचनार्थ यहि बात।
जो हैं सेनप आपने दरसावत हों तात! ॥ ७॥

7. Know further those who are our chiefs,
O foremost of the twice-born men!
The leaders of my army, too,
For information I name them.

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

आपु भीष्म अरु कर्ण कृप जयी सिंधुपति धीर ।
अश्वत्थाम विकर्ण अरु सौमदत्ति बलवीर ॥ ८ ॥

8. Thyself, good Sir, and Bhishm and Karn,
And Kripa, oft-victorious lord,
Ashvatthama and Vikarna,
Saumadatti, Jayadratha.

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

मम लगि जीवन त्याग करि अन्य अनेकहु वीर ।
अस्त्र शस्त्र धारण किये युद्धचतुर सब धीर ॥ ९ ॥

9. And many other valiant men,
Who, for my sake, renounce their lives,
With diverse weapons arm'd in full,
And experts in the art of war.

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

बल हमार पर्याप्त नहिं भीषम जाके नाथ ।
शत्रुसेन पर्याप्त यहि भीम जाहि के साथ ॥१०॥

10. Yet insufficient seems our force,
Though marshall'd by the mighty Bhishm,
While that of theirs seems sufficient,
In Bhima's own supreme command.

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवंतः सर्व एव हि ॥११॥

यथा भाग अब घेरकै सब नाके तेहि हेत ।
पूर्ण रीतिसों तुम सभी रक्षहु भीष्म सचेत ॥११॥

11. Therefore let all in rank and file
Stand firm at their appointed posts,
Let each keep watch and Bhishma guard,
E'en all ye marshals, wide awake.

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखंदध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

तेहि चित हर्षित करन हित भीष्म पितामह आइ ।
सिंहनाद करि शङ्ख तब तुरतहि दियो बजाइ ॥१२॥

12. The Ancient of the Kurus, then,
The Grandsire, glorious and renown'd,
Blew his great conch, to cheer him up,
Raising on high a leonine sound

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यंत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३

शंख भेरि ताशे तबहि नरसिंहे इक साथ ।
नक्कारे बाजन लगे भयो महारव नाथ ॥१३॥

13. Then conches, tabors, kettle-drums,
And cow-horns suddenly blared forth,
And sound tumltuous rose on high,
All mingled in a fearful din.

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ।
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

श्वेततुरंगमयुत तहां रह्यो दीर्घ इक यान ।
ता बिच बैठे पार्थ हरि फूँके शंख महान ॥१४॥

14. Then, Madhav and the Pandava,
Both seated in a mighty car,
Yoked to a team of horses white,
Blew on their shells divine a blast.

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

देवदत्त अर्जुन तबहि पांचजन्य हृषिकेश ।
पौंड्र वीरवर भीमने धुधकार्यो शंखेश ॥१५॥

15. On Panchjanya, Hrishikesha,
And Dhananjay on God-bestow'd,
While on his mighty conch, Paundra,
Vrikodar blew, of awful deeds.

अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

विजयअनन्तहु युधिष्ठिर कुन्तीसुत नरदेव ।
नकुल सुघोषहु धुधुकर्यो मणिपुष्पक सहदेव ॥१६॥

16. And King Yudhishthir, Kunti's son,
Blew on "The Endless Victory,"
And Nakul on "The Dulcina",
And Sahdev on the "Gem-bedeck'd"

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥१७॥

महा धनुर्धर काशिनृप रथी शिखंडीराज।
धृष्टद्युम्न बिराट अरु सात्यकि अजित सुसाज॥१७॥

17. And Kashya of the mighty bow,
And Shikhandi, car-warrior great,
And Dhrishtadyumna and Virat,
And Satyaki, unconquer'd lord.

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥१८॥

द्रुपदसुतासुत अरु द्रुपद महाबाहु अभिमन्यु।
न्यारे न्यारे शंख सब घुघुकारे सहमन्यु॥१८॥

18. And Drupada and his grandsons,
And Saubhadra, the long-arm'd one,
On all sides, each, O Lord of Earth!
Blew his own conch and tumult swell'd.

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्॥१९॥

धरणि और आकाश में शब्द रह्यो भरपूर।
जातें कुरुदल के हृदय हुइ गये चकनाचूर॥१९॥

19. That roar tremendous rent the heart
Of all the Dhartarashtras there,
Filling the earth and sky above,
With echoes rous'd to life amain.

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥२०॥

पुत्रन कों धृतराष्ट्र के लखि ठाढ़े युद्धार्थ ।
अस्त्र शस्त्र छूटन समय धनुष उठायो पार्थ ॥२०॥

20. Beholding Dhartarashtras there,
Standing amid their marshall'd hosts,
Ape-banner'd Pandav raised his bow,
At time of missiles falling fast.

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच—

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥

हृषीकेश सों वचन तब बोल्यो यहि महिपाल !

अर्जुन ने कहा ।

अच्युत ! रथ ठाढ़ो करो सेन मध्य यहिकाल ॥२१॥

21. O Lord of Earth ! then Arjun spake
To Hrishikesh, his charioteer,

Arjuna said.

"Mid-way between these armies twain,
Halt thou my car, Immortal One !"

यावदेतान्निरीक्ष्येऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

मैं तिन देखन चहत हों आये जो रण हेत ।
कौन कौन तें युद्ध अब करनो है बिच खेत ॥२२॥

22. "That I may here behold the foes
Who come with longing for a fight,
With whom indeed I must contend
In this great war that now begins.

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

दुर्योधन मतिमंद के शुभचिंतक हों जोइ।
युद्धहेत आये यहां देखों तिन सब कोइ ॥२३॥

23. "That I may see those that have come,
All eager for the coming fight,
Anxious to please, and serve in war,
Dhritrashtra's evil-minded son."

संजय उवाच—

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥

संजय ने कहा।

जब अर्जुन ने कृष्ण सों कहे नृपति अस बैन।
थाप्यो रथ सर्वेश ने तब बिच दोऊ सैन ॥२४॥

Sanjaya said ;—

24. Requested thus by Gudakesh,
Then, Hrishikesh, O Bharat's son!
Halted that mighty car at once,
Mid-way between those armies twain.

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

भीष्म द्रोण अरु नृपन के सन्मुख कह यदुराइ।
देख पार्थ कुरुदल जम्यों युद्धहेत यहँ आइ ॥२५॥

25. Facing directly Bhishm and Dron,
And all the rulers of the earth,
He said : "Behold, O Pritha's son,
The Kauravas assembled here."

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा २६

तहँ पारथ देखे खड़े काका दादा बीर।
गुरु मामा श्याला सखा सुहृद भ्रात रणधीर ॥२६॥

26. Then saw the son of Pritha there,
Uncles, granduncles, teachers, sons,
Mother's relations, grandsons, too,
Comrades, companions, friends and kin.

श्वसुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥ २७

पुत्र पौत्र बान्धव श्वसुर प्रियजन हू सब कोइ।
उभय सैन बिच पार्थ ने लखे जो आये सोइ ॥२७॥

27. Fathers-in-law and bosom-friends,
Amidst the both assembled hosts,
And seeing all these kith and kin,
Drawn up, array'd in battle form,

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
अर्जुन उवाच—
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥

दयामग्न हुइ तब महा दुखित कहत बलबीर।
अर्जुन ने कहा।
कृष्ण देखि कै स्वजन ये रणहित खड़े अधीर ॥२८॥

28. With deep compassion overcome,
And full of grief, he spake these words:
Arjuna said.
"O Krishna, seeing kinsmen dear,
All standing eager for the fight,

सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२६॥

मुख मेरो सूखन लग्यो शिथिल भयो सब गात ।
कांपत तन मेरो अधिक रोमहर्ष बहुतात ॥२९॥

29. "My limbs fail me, bereft of pow'r,
My mouth is parch'd and dry like sand,
There thrills a tremor through my frame
My hair with horror stands on end.

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

गाण्डीवहु करसों खसत जरत त्वचा सब देह ।
खड़े रहन की शक्ति नहिं भ्रमत चित्त छन एह ॥३०॥

30. "My bow Gandiva slips from hand,
My skin all burneth fever-like,
Unable here to stand am I,
My mind distracted madly whirls.

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

सब असगुन मैं लखत हौं नाहिं लखत कल्यान ।
का विधि हम सुख पाइ हैं बंधुन के हति प्रान ॥३१॥

31. "And I, O Keshav, also see
Dread omens, adverse to our cause,
Nor do I see how good might come
By slaying kinsmen on the field.

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

विजय न चाहत कृष्ण ! मैं नाहिं राज्यसुख चाह ।
मोह राज्य अरु भोग सों जीवन सों प्रभु ! काह ? ॥३२॥

32. "I want not victory, Govind,
Nor kingdom, riches, pleasure, sway,
For what is kingship with its wealth,
What is enjoyment, life on earth ?

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३

जिन के हित हम चहत हैं राज भोग सुख साज ।
ते ठाढ़े तजि प्राण धन युद्धक्षेत्र में आज ॥३३॥

33. "When those for whose sake we desire
Dominion, pleasure, wealth and pow'r,
Stand here and wish to fight it out,
Aband'ning life and riches all.

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाःश्वसुराःपौत्राःश्यालाःसंबन्धिनस्तथा ॥३४

काका बाबा सुत गुरू मामा ससुरे जोइ ।
नाती साले मित्र अरु सम्बन्धी सब कोइ ॥३४॥

34. "Revered preceptors, fathers, sons,
Grandsires, maternal uncles, too,
Fathers-in-law, brothers-in-law,
Grandsons, and other kith and kin.

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

मारतहू मारन चहौं इन्हैं न मधुहंतार !
तीन लोक के राज लगि कहा मही अधिकार ॥३५॥

35. "I would not kill these kinsmen dear,
Though I myself be slain by them,
E'en for dominion of three worlds,
Much less for earth, O Madhava !

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

का सुख हम लहिं हैं प्रभो ! धार्त्तराष्ट्रदल मारि ।
पापहि लागे हमन कौं आततायि संहारि ॥३६॥

36. "What joy, Janardan, shall we have,
When we have slain Dhritarashtra's sons ?
Nay, we may incur sin alone
By cutting down these wicked men.

तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

ताते इनको मारिबो कबहुं न हम को जोग ।
बंधु हनन करि कस लहैं माधव ! सुख संजोग ॥३७॥

37. "Therefore we should not kill the sons
Of Dhritarashtra, kinsmen near,
For how by slaying these we may
Secure the quiet of the mind ?

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥

यदपि लोभ के फंद में फँसि ये लखत न आप ।
वंशनाश अपराध कों मित्र द्रोह के पाप ॥३८॥

38. "Although these men blinded by greed,
With reason clouded by desire,
Don't see the sin of slaying kin,
The crime of hate bestow'd on friends.

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥

क्यों उपाय हम नहिं करें जासों छूटै पाप ?
कुलघातक के दोष लखि कहो जनार्दन आप ॥३९॥

39. "Why should not we begin to learn
To turn away from such a sin,
Who plainly see, O Janardan,
The crime of murd'ring kith and kin?

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

वंशनाश तें नसत हैं सबहि सनातन धर्म ।
धर्म नाश तें सब कुलहि ग्रसत व्रजेश ! कुकर्म ॥४०॥

40. "In such a massacre are lost
The immemorial racial rites,
When this occurs, the race becomes
The prey of lawlessness, besides.

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥४१॥

जब अधर्म की बाढ़ तें तिय दुष्टा हुइ जाहिं ।
हे यदुपति ! संकर तबहिं जन्मत हैं तिन माहिं ॥४१॥

41. " When Krishna, lawlessness prevails,
The women of the race go wrong,
The women tainted, Vrishni's son,
Caste-confusion doth arise.

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥४२॥

कुलघातक के दोष तें उपजत विपद महान ।
गिरत पितर इन के नरक लुप्तपिण्ड जलदान ॥४२॥

42. "Caste-confusion drags to hell
The slayers of the family,
And their ancestors fall depriv'd,
Of rice-balls and libations, then.

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥४३॥

कुलनाशक के पाप तें संकरकारक जोइ ।
जातिधर्म कुलधर्म को निश्चय डूबन होइ ॥४३॥

43. "Through these misdeeds of evil ones,
Of those that extirpate the race,
The immemorial racial rites,
And those of clans, are lost for good,

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

जबहिं जनार्दन! पुरुष के धर्म कर्म नसजाहिं।
निश्चय वे मैं सुनत हों परत नरक के माहिं ॥४४॥

44. "And, O Janardan, we have heard,
The grim abode of all such men,
Whose racial rites are all wiped out,
Is everlastingly in hell.

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्य सुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यता ॥४५॥

घोर कर्म के करन कों उद्यत हैं हम, हाइ!
निज बंधुन के हनन कों सुख अरु राज्य लुभाइ ॥४५॥

45. "Alas! alas!! how foul the sin,
To which we wish to set our hands,
Since, from the greed of sovereign sway,
We rise to slay our kith and kin.

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

शस्त्रधारि वे शस्त्र अरु प्रतीकार बिनु पाइ।
जो मारें मोकों यहीं मम मंगल हुइ जाइ ॥४६॥

46. "If these Dhartrashtras, sword in hand,
Should slay me helpless and unarm'd,
'Twere better far for all concern'd,
Than answer them with blow for blow.

संजय उवाच—

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

संजय ने कहा ।

अस कहि पारथ युद्ध बिच रथ पीछे रहि बैठ ।
धनुषबाण त्यागत भयो शोक रह्यो मन पैठ ॥४७॥

Sanjaya said:—

47. Having thus spoken on the field,
Arjun his bow and arrows flung,
And sank down forthwith on his seat,
Giving full vent to grief and moan.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषाद-योगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

——::*::——

इति अर्जुनविषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥
ओ३म् तत् सत्

——::o::——

Here Endeth The First Discourse
Entitled
THE DESPONDENCY OF ARJUNA.

अध्याय २

संजय उवाच—

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदंतमिदंवाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

संजय ने कहा—

आँखिन में आँसू भरे दुखित चित्त लखि ताइ ।
मधुसूदन बोले वचन अर्जुन सों समुझाइ ॥ १ ॥

Sanjaya said:—

1. THEN, him, with pity overcome,
With smarting, tearful eyes, and sad,
Depress'd in spirit, plunged in grief,
The Foe of Madhu, thus address'd.

श्रीभगवानुवाच—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—

भयो मोह यह कहाँ ते अर्जुन ! अपयशकार ।
स्वर्गहारि अरु नरकप्रद आर्यअयोग्य विकार ॥ २ ॥

The Blessed Lord said:—

2. Whence this dejection, Arjun, say,
Which grips thee in this risky strait,
Inglorious, heaven-closing, too,
Ignoble, by the brave abhorr'd.

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

पार्थ ! नपुंसकता न गहु तुम्हें योग्य अस नाहिं ।
मनदुर्बलता क्षुद्र तजि उठौ लड़ौ रण माहिं ॥ ३ ॥

3. Yield not to impotence, O Parth !
It hardly suits a man like thee,
Shake off this feeble-heartedness,
And stand up firm, Parantapa.

अर्जुन उवाच—

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

अर्जुन ने कहा—

भीष्म द्रोण जो पूज्य हैं मेरे मधुहंतार !
तिन पर कहु कैसे करों रण में बाण प्रहार ? ॥ ४ ॥

Arjuna said—

4. "How can I strike, O Madhu's Foe,
Bhishma and Dron with arrows, say,
Those that are worthy of respect ?
Think of that, Thou, Slayer of Foes.

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

भिक्षा भोजन लोक में है वर गुरुन न मारि ।
अर्थी गुरुजन मारिकै भोग रुधिरयुत भारि ॥५॥

5. "Much better in this world to eat
The beggar's humble crust for life,
Than to slay preceptors wise,
And taste of blood-besprinkled feast.

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

नहिं जानै हम को बड़ौ जय अरु अजय मझार ।
जिन्हें मारि हम नहिं जियें ते समक्ष तय्यार ॥ ६ ॥

6. "Nor do I see which better is,
To conquer them or conrt defeat,
By slaying these, we should not live,
Our uncle's sons, opposed to us.

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

मोहदोषहत शूरता धर्ममूढ़ चित मोर ।
शरणागत पूछौं कुशल अहौं शिष्य मैं तोर ॥ ७ ॥

7. "My heart is faint, my mind confused
I ask of Thee, the better way,
That tell me plainly, once for all,
Help me, Thy pupil, seeking Thee.

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

शत्रुहीन अवनीशपद अमरराज्य हू पाइ ।
नाहिं लखौं शोकाग्नि किमि इन्द्रियशोषक जाइ ॥ ८ ॥

8. "I do not see how it could end
This anguish that withers my heart.
If I should earthly sway attain,
Or e'en the sovereignty of gods."

संजय उवाच—

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूवह ॥९॥

संजय ने कहा—

अर्जुन तब श्रीकृष्ण सों बोलत भये अस बैन।
युद्ध न करिहौं परंतप! अस कहि रहे अचैन ॥ ९ ॥

Sanjaya said:—

9. Having thus answer'd Hrishikesh,
Gudakesh, the Slayer of Foes,
Again address'd Govinda thus,
"I will not fight," and held his peace.

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः।१०॥

हे भारत! तब कृष्ण ने कह्यो वचन मुसुकाइ।
अर्जुन सों जो सेन बिच रह्यो ठाढ़ बिलखाइ ॥१०॥

10. To him dejected and depress'd,
While station'd mid those armies twain,
Hrishikesh, O Bharat's son,
Smilingly these words address'd:—

श्रीभगवानुवाच—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥११॥

श्रीभगवान् ने कहा—

शोक अयोग्यनि शोचते बोलत हो बुध बैन।
जिये मरे के विषय में शोचत नहिं मतिऐन ॥११॥

The Blessed Lord said:—

11. Thou givest vent to grief for those
That ought not to be grieved at all,
Yet speakest words of wisdom rare,
But wise mourn not living or dead.

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

का हम तुम ये मनुजपति कबहुँ न भये कोउ काल ? ।
का फिर कबहु न होइँगे हम सब ये भूपाल ? ॥१२॥

12. There was no time when I was not,
Nor thou, nor these that rule mankind,
Nor shall we ever cease to be,
Hereafter, or in future time.

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

ज्यों प्राणी की देह में बाल्य जरादिक होइ ।
त्यों ही दूसर तन लहत मोहत बुध नहिं कोइ ॥१३॥

13. As dweller in this body sees
Childhood and youth and age, forsooth,
So other bodies he assumes,
The wise feel not distress'd at this.

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदा ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४

शीत उष्ण सुख दुख सबहि इन्द्रिन के संभोग ।
ये अनित्य सहिये इन्हें लखि संयोग वियोग ॥१४॥

14. Contacts of matter, Kunti's son,
Give cold and heat, pleasure and pain,
They come and go, impermanent,
Endure them bravely, Bharata.

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

पुरुषोत्तम! जो वीरवर इन्हसों दुखी न होइ।
सम दुख सुख जो धीर नर मुक्ति योग्य है सोइ ॥१५॥

15. Him whom these in no way torment,
Nor shake from peace, O chief of men!
Balanced in pleasure and in pain,
Fit for immortal life they call.

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

नाशवान थिर होत नहिं थिर नहिं कबहुं नसात।
तत्त्वदर्शि दोऊ दशा जानत हैं सुनु तात! ॥१६॥

16. Unreal hath no existence,
While real continues to be,
The truth about this is perceiv'd
By those that see the core of things.

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

अविनाशी तेहि जानिये जो व्यापक सब मांहि।
अविनाशी के नाश लगि कोऊ समरथ नाहिं ॥१७॥

17. Know that to be without decay
By whom pervaded, all endures,
Nor does it lie with any one,
To cause destruction of that One.

अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

देही सदा विनाश बिन देह नष्ट यहि जान।
तातें अर्जुन ! लड़हु तुम अमर अमित पहिचान ॥१८॥

18. These bodies of th' embodied soul,
Which is eternal in essence,
Are known as finite, sure to fall,
Fight out, therefore, O Bharat's son !

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥१९

जो याकों हन्ता कहै वा हत मानत जोइ।
ये दोऊ जानत नहीं हनै न हत सो होइ ॥१९॥

19. He who thinks that he doth slay,
And he who thinks that he is slain,
Parth ! both of them are ignorant,
He slayeth not, nor is he slain,

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

नहिं जन्मत नहिं मरत कभु हुइकै नाश न होइ।
अजर अमर अरु नित्य जो मारे मरै न सोइ ॥२०॥

20. He is not born, nor doth He die,
Nor, having been, ceaseth to be,
Unborn, eternal, undecay'd,
He is not kill'd, when body's slain.

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम् ॥२१॥

जानत अव्यय नाशबिनु ताहि नित्य अज जोइ ।
हनै काहि अरु पार्थ ! कहु काहि हनावै सोइ ॥२१॥

21. Who knoweth Him without decay,
Perpetual, deathless, and unborn,
How can that person ever slay,
Or cause a slaughter, Pritha's son?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

ज्यों नर त्यागत वस्त्र कों जो पुरान हुइ जाइ ।
अरु नवीन धारन करत त्यों देही तन पाइ ॥२२॥

22. As man laying his worn-out robes away,
Taketh new ones and puts them on, O Prince!
So dweller in this perishable frame,
Casting old bodies donneth fresh again.

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

कटत नाहि यहि शस्त्र सों जरत न अनलहु माहिं ।
भीजत नहिं जल सों कबहु पवनहु सोखत नाहिं ॥२३॥

23. Weapons can cleave Him not at all,
Nor fire can burn that deathless One,
Nor waters wet Him in the least,
Nor wind dries up that Prime Essence.

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

यहि अछेद्य नहिं जर सकत भीजत सूखत नाइ ।
नित्य सर्वगत थिर अचल सदा सनातन गाइ ॥२४॥

24. Uncleavable, unburnable,
Unwettable, undryable,
Perpetual, all-pervading, He,
Beyond all motion and immune.

अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

यहि अव्यक्त अचिंत्य यहि निर्विकार अस जान ।
तातैं शोचन योग्य नहिं पार्थ ! करहु पहिचान ॥२५॥

25. Unmanifest, unthinkable,
And changeless He is said to be,
So, knowing Him as such, O Parth !
'Tis hardly fit that thou shouldst mourn.

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

जन्म लेत अरु मरत नित मानत अस जो याहि ।
तबहुँ न शोचन जोग यहि अस तुम जानौ ताहि ॥२६॥

26. Or if thou thinkest Him as born,
And likewise subject to decay,
E'en then, O mighty-armed Chief,
Thou shouldst not grieve at all for Him.

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

जनम लिये पै मरन ध्रुव मृतक जन्म निर्धार।
जो भावी अनिवार्य है शोकहु वृथा तुम्हार ॥२७॥

27. For death is certain for the born,
As birth is certain for the dead,
Therefore thou shouldst not grieve at all,
Because it lies beyond control.

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

आदि अंत में प्रकट नहिं मध्यहि प्रकटत जोइ।
भारत ! जहँ ऐसी दशा शोक करे का होइ ॥२८॥

28. Unmanifest in origin,
And manifest in middle state,
Unmanifest again at last,
What room for grief abideth here ?

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

अचरज सम कोउ यहि लखत अचरज भाषत कोउ।
अचरज तैं कोउ सुनत है तऊ न जानत सोउ ॥२९॥

29. Marvellous Him one person sees,
Marvellous Him the other calls,
Marvellous Him a third one hears,
Yet none Him fully comprehends,

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

देही नित्य अवध्य यह भारत! सब तन माहिं।
तातैं सब प्राणीन के सोच योग्य तू नाहिं ॥३०॥

30. This dweller in the frames of all
Remains, O Prince !, unharm'd for e'er,
So thou shouldst not give way to grief,
For any creature in the world.

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि।
धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

आपन धर्म विचार हू नहिं काँपन के जोग।
धर्मयुद्ध तैं अधिक कछु गनै न क्षत्रिय लोग ॥३१॥

31. Then looking to thy duty own,
Thou shouldst not tremble, Pritha's son,
For nothing is more welcome here
Than righteous war to Kshatriya.

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

स्वयं प्राप्त जो पार्थ यहि खुलो स्वर्ग कौ द्वार।
क्षत्रिय ऐसे युद्ध कौं पावत सुखद अपार ॥३२॥

32. Happy the Kshatriyas, O Parth !
Who such a glorious war obtain,
Offer'd unsought, without effort,
An open door to highest heav'n.

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥३३॥

धर्मयुक्त या युद्ध कों जो न करै तू आप।
तौ स्वधर्म अरु कीर्ति तजि निश्चय पावहि पाप ॥३३॥

33. But if thou wilt abstain from war,
From righteous contest on this plain,
Then casting self-respect away,
'Tis sure, that thou wilt incur sin.

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यंति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

करि हैं अर्जुन ! लोग तव अपकीरति नहिं थोर ।
माननीय की मरन तैं अधिक अकीरति घोर ॥३४॥

34. Undying shame will sure pollute
Thy honour'd name among mankind,
As for a man of spotless fame,
Dishonour's surely worse than death.

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

भय तें भाग्यो तोहि सब समुझें रथी महान ।
लघुता पैहौ तिनहि तैं जिनन कियो सन्मान ॥२५॥

35. Great warriors, Parth, will say thou fledst
From battle-field for fear of life,
And thou, that wast esteemed by them,
Wouldst in their eyes appear light.

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यंति तवाहिताः ।
निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

बहुतक अनकहनी कहहिं अर्जुन ! शत्रु तुम्हार ।
निंदहिं तव सामर्थ्य कों, सो नहिं दुःख अपार ? ॥३६॥

36. And they will speak unseemly words,
That hate thee from their core of heart,
Casting foul slander on thy strength,
What is more painful, friend, than this ?

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

मरे पाइहो स्वर्गसुख जीते भुइँ को राज ।
तातें कुंतीसुत ! उठौ करि निश्चय रणसाज ॥३७॥

37. If slain, thou wilt attain to heav'n,
Victorious, thou wilt earth enjoy,
Stand up, therefore, O Kunti's son,
And waking up, prepare for war.

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

लाभ हानि अरु जय अजय सुख दुख हू सम मान ।
युद्ध करन कों कटि कसौ पाप न यासें जान ॥३८॥

38. Taking as equal, joy and grief,
Taking as equal, gain and loss,
And likewise success and defeat,
Gird up, thou shalt not incur sin,

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियोंगे त्विमां शृणु ।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥३९॥

यहि शिक्षा है सांख्य की योगहु की सुनु जोइ ।
कर्म बन्ध तें पार्थ तव जातें छूटन होइ ॥३९॥

39. This teaching's set forth as in Sankhya,
Hear it now as Yog declares,
Imbued with which, O Pritha's son !
The bonds of action, thou shalt quit.

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

नाहिं परिश्रम व्यर्थ कसु छुटत विकार न होइ ।
भय भारी तें रखत है तनिक धर्महू सोइ ॥४०॥

40. In this no loss of effort lies,
Nor obstacle of any kind,
A little of this knowledge can
Protect mankind from fear immense.

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन ।
बहुशाखा ह्यनंताश्चबुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

हे कुरुनन्दन ! बुद्धि हू व्यवसायिन की एक ।
अव्यवसायिन की बहुत शाखायुक्त अनेक ॥४१॥

41. Reason determinate is one,
O joy of Kurus, keep in mind,
Branching in directions all
And endless, are the thoughts of Sloth.

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥

चिकनी चुपड़ी बात जो बोलत हैं नर मूढ़।
हुइ अनन्यवादक तथा वेदवादरत कूढ़ ॥४२॥

42. What idle talk they indulge in!
Those foolish men who take their stand
On outer sense of Holy Writ,
And say that there is naught but this.

कामात्मानः स्वर्गपरा, जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

काम परायण स्वर्गरत जन्मकर्मफल हेत।
विविध कर्म सिखवहिं करन प्रिय संकल्प समेत ॥४३॥

43. By keen desire for self impell'd,
With heav'n as goal before them set,
They offer birth as actions' fruit,
Prescribing rites for pleasure's sake.

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

ता वाणी ते जो ढक्यो भोग सक्त मन जास।
व्यवसायात्मिक बुद्धि को नहिं ता मन में वास ॥४४॥

44. For those that cling to pleasure here,
Whose mind this teaching captivates,
Reason's dry light is not design'd,
Which is on contemplation based.

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वंद्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

त्रिगुण विषय सब वेद हैं, त्रिगुण पार हो वीर ।
द्वन्द्व रहित नित सत्वथित योगक्षेमबिनु धीर ॥४५॥

45. The Vedas deal with attributes,
Be thou above them, Arjuna,
Beyond the pair of opposites,
Pure, steadfast, full of higher faith.

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

एक कूप में बाढ़ बिच नर कौ जेतौ स्वार्थ ।
ज्ञानप्राप्त बुध कौ तथा वेदन में सुनु पार्थ ॥४६॥

46. Scriptures to enlightened souls
As useful are as pools or tanks,
In a place cover'd all over
With, waters' extensive expanse.

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

कर्महि में अधिकार तव फल में कबहू नाहिं ।
हेतु कर्मफलकौ न बन तजअकर्म सँग काहि ॥४७॥

47. Thy concern with the action is,
But never with its fruit, O Parth !
Let not the fruit of action, then,
Thy motive be, inaction bar.

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ४८॥

योगयुक्त हुइ कर्म करु संग छांड़ि कै पार्थ !
सिद्धि असिद्धि समान जहँ वहीं योग परमार्थ ॥४८॥

48. Perform thou action, Wealth-winner,
Dwelling in union with divine,
In success and in failure same,
Yoga is perfect equipoise.

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४६॥

बुद्धियोग तैं न्यूनतर कर्महि अर्जुन जान ।
लेउ सहारो बुद्धि कौ कृपण फलाशावान ॥ ४९ ॥

49. Far lower than the Wisdom-path
Is Action, Conqueror of Wealth,
Take thou refuge in Reason then,
Paltry are those that work for gain.

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

बुद्धियुक्त यहिलोक में पाप पुण्य तजि देत ।
कर्म कुशलता योग है योग गहो तेहिं हेत ॥ ५० ॥

50 By walking in this holy path,
One gives up good and evil deeds,
Engage, therefore, in Yog alone,
Yoga is skill in action, Parth !

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥५१॥

बुद्धियुक्त ज्ञानी करत कर्मज फल को त्याग ।
जन्मबन्ध तैं मुक्त हुइ लहत परमपद भाग ॥ ५१ ॥

51. Sages to Reason's light allied
Renounce the fruit which action yields,
And freed from bonds of birth and death
Repair to blissful seats above.

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

बुद्धि तोर जब मोह कौ कल्मष करि है पार ।
श्रुत श्रोतव्य विराग कौ तब मिलि है उपहार ॥ ५२ ॥

52. When from Delusion's winding path,
Thy balanced mind will safe emerge,
Thou shalt, then, rise to indiff'rence,
Regarding things heard and unheard,

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदास्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

वेदवचन विक्षिप्त मति जबहि अचल ठहराइ ।
पाइ समाधी पार्थ तब योगयुक्त हुइ जाइ ॥ ५३ ॥

53. When free from all bewilderment,
Occasion'd by the Shastras here,
Thy mind shall stand immovable,
Thou shalt attain to Yoga, then.

अर्जुन उवाच —

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥५४॥

अर्जुन ने कहा।

थिरमति अरु योगस्थ की केशव का पहिचान ?
कैसे बोलत चलत अरु बैठत करो बखान॥ ५४॥

Arjun said .—

54. " What marks of him who stays in Yog,
And dwells in contemplation true?
How doth he talk, O Keshav, say,
How doth he sit, how walks along ? "

श्रीभगवानुवाच—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

श्री भगवान् ने कहा।

त्यागि सकल मनकामना तुष्ट होइ जब पार्थ !
आतम में आतम जुटे थिरमति तबहि यथार्थ ॥ ५५ ॥

The Blessed Lord said :—

55. Now when a man gives up, O Parth !
All his desires of the heart,
And with the self is satisfied,
Then, stable-minded he is call'd.

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

दुख में चित व्याकुल नहीं सुख की चाह न जाइ।
विगत राग भय क्रोध जो थिरमति मुनी कहाइ॥ ५६ ॥

56. Quite free from anxious thought in pain,
To pleasure wholly indiff'rent,
Exempt from passion, fear and wrath,
A sage of stable mind he is.

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

नेह रहित जीवादि बिच, कबहु शुभाशुभ पाइ ।
हर्ष शोक जो नहिं करत ताकी बुद्धि थिराइ ॥ ५७ ॥

57. He who is unattach'd to things,
Whatever hap of fair or foul,
Who neither likes nor yet dislikes,
The mind of such is poise'd well.

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

ज्यों कछुआ निज अंग कौं खेंचि आपु में लेत ।
तैसे इन्द्रियगण खिच्यो निश्चल मति कर देत ॥ ५८ ॥

58. As tortoise draws in all its limbs,
Let wise one also do the same,
Withdrawing sense from worldy things,
This is the sign of pois'd mind.

बिषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

निराहार जन कों विषय तजिकर करत पयान ।
बिन रस, रसहू करत है लखि पर कों प्रस्थान ॥५९॥

59. The objects of the human sense,
But not the relish which they bear,
Turn from abstemious souls away,
E'en relish goes when He is seen.

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥६०॥

यत्न करत जो विज्ञहू कुन्तीसुत थिति हेत ।
तिनहूं को इंद्रिय प्रबल बरबस करत अचेत ॥६०॥

60. Sensual excitement, at its height,
Driveth per force e'en sage's mind,
Although he strives to keep control,
And struggles hard to stem the tide.

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

तिनहि जीति कर युक्त पुनि मो में तत्पर होइ ।
जाके वश इंद्रिय रहैं निश्चय थिरमति सोइ ॥६१॥

61. Restraining well his mind, O Parth!
A sage should sit compos'd and calm,
For he who senses can control,
Of him the soul is pois'd well.

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥६२॥

विषयन में रति होत है जब नर ध्यान लगाव ।
रति कामहिं दृढ़ करत है काम क्रोध उपजाव ॥६२॥

62. Man, musing on objects of sense,
Becomes attach'd to them, at once,
Attachment brings desire on,
And this produces discontent ;

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

होत क्रोध तें मोह अरु तासों मतिभ्रम पाश ।
तातें बुद्धि विनाश पुनि बुद्धि नाशतें नाश ॥६३॥

63. From discontent delusion comes,
Delusion breeds forgetfulness,
Forgetfulness doth Reason slay,
And loss of Reason killeth man.

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

राग द्वेष तजि वश करै मन के इंद्रिन जोइ ।
मनोजयी अरु विमलमति पावै शान्तिहि सोइ ॥६४॥

64. But Self disciplin'd and controll'd:
Moving mid objects of the sense,
Passing unscathed and unattach'd,
Attains to peace and final rest.

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

जब प्रसन्न मन होत है सबहि क्लेश मिट जाइ ।
विमलचित्त की बुद्धि पुनि तुरतहि पार्थ ! थिराइ ॥६५॥

65. When he the peace of mind obtains,
All pains for him become extinct,
And when the heart is set at rest,
Reason attaineth evenness.

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशांतस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

नहिं अयुक्त की बुद्धि थिर नहिं अयुक्त के भाव ।
भाव बिना नहिं शान्ति पुनि ताबिनु सुख को पाव ? ॥६६॥

66. There is no Reason without poise,
Nor concentration of the mind,
There is no peace at all for him,
How are unpeaceful happy, then ?

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥६७॥

इन्द्रियवश मन होत जब तबहि बुद्धि हर लेत ।
जैसे जल में नाव कों पवन झकोरा देत ॥६७॥

67. Whichever sense is left uncheck'd,
While mind, quite listless, looketh on,
Soon puts the man's will out of court,
As gale in water drives a ship.

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

अर्जुन ! इन्द्रियभोग तैं इन्द्रिन खैंचत जोइ ।
अरु मन कों वश करत है ताकी मति थिर होइ ॥६८॥

68. Therefore, O mighty-armed chief !
Whose senses are complete shut out
From pleasure-objects here below,
Of him the mind is pois'd well.

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥६९॥

जो रजनी सब सृष्टि की तामें यती जगाइ ।
जामें सब प्राणी जगें तामें मुनि सोजाइ ॥६९॥

69. That which is night for beings all,
For sages 'tis the waking time,
When other beings wake up, Parth!
Then it is night for one who sees.

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे
स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

पूरन अचल समुद्र बिच ज्यों नद करत प्रवेश ।
त्योंही यतचित शांति लह बिना काम लवलेश ॥७०॥

70. He, in whom desires dwell,
As rivers do in Ocean wide,
Attaineth peace of mind, forsooth,
Not he who longs for earthly things.

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥७१॥

सबहि कामना त्याग करि बिनु इच्छा जब होइ ।
अहंकार ममता रहित मनुज शांति लह सोइ ॥७१॥

71. He who forsaketh all desires,
And onward goeth, passion-free,
Selfless, without the pride of soul,
Attains to everlasting bliss.

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामंतकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

ब्रह्मप्राप्ति साधन सुगम जा बिच मोह न होइ।
अंतकाल जो गहत यहि लहत परम पद सोइ ॥७२॥

72. This is Eternal State, O Parth!
None gets confused attaining that;
E'en he, who is about to die,
Obtains Salvation, anchor'd there.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

——::*::——

इति सांख्ययोगोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

ओ३म् तत् सत्

——::o::——

Here Endeth The Second Discourse
Entitled
SANKHYA-YOGA.

———

अध्याय ३

अर्जुन उवाच—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥१॥

अर्जुन ने कहा ।

बुद्धि कर्म तें अधिकतर जो मानत हो आप ।
तौ मोसों केशव कहो क्यों करवावत पाप ? ॥ १ ॥

Arjuna said :—

1. "If Knowledge, O Janardan, be
Superior to all Action here,
Why dost thou, Keshav, urge me on
To do this dreadful deed of blood?

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

मिश्रित से तुम्हरे वचन मति मोहत हैं मोर ।
कृष्ण कहहु निश्चित वचन ज्यों शुभ लहहुँ अथोर ॥ २ ॥

2. "Thy speech is equivocal, Lord,
It can at best confuse my mind,
Tell me one thing with certainty,
By which I may to bliss attain."

श्रीभगवानुवाच—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

श्रीभगवान् ने कहा।

अनघ! पूर्व ही कहि चुक्यो तुमतें निष्ठा दोइ।
ज्ञान कर्म संयोग तैं पारथ! जानिय सोइ ॥ ३ ॥

The Blessed Lord said :—

3. A twofold path existeth here,
O Sinless One, as said before,
For knowers, Path of Knowledge true,
For workers, Path of Action, sure.

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

अनारम्भ तें कर्म के निष्कर्मा नहिं होइ।
कर्मत्याग हू तै कबहु सिद्धि लहत नहिं कोइ ॥ ४ ॥

4. Man doth not win his freedom here,
Refraining from an active life,
Nor doth he to perfection rise,
Renouncing action outwardly.

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

नहिं कोऊ कबहू रहत छिन भर हू बेकार।
त्रिगुण करावत सबहिसों अबश कर्म व्यवहार ॥ ५ ॥

5. Nor can one actionless remain,
E'en for the twinkling of an eye,
For he is goaded on to work,
By matter's qualities impell'd.

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इंद्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

कर्मेन्द्रिय कों रोक कै मन में सुमिरत जोइ ।
विषय भोंग कों मूढ़ मति मिथ्याचारी सोइ ॥ ६॥

6. The self-deluded man who lives,
His active organs held in check,
Yet musing on objects of sense.
That man a *hypocrite* is call'd.

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

मन तें इन्द्रिन दमन कर विषय वासना त्याग ।
कर्म करत जो पार्थ ! इह पावत सो बड़ भाग ॥ ७ ॥

7. But who, contrlling sense by mind,
With active organs unattach'd,
Performeth Yog by action true,
He is, O Arjun, man of worth,

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥८॥

नियत कर्म कर पार्थ ! तू बड़ अकर्म तें कर्म ।
पालन पोषन देह कौ नहिं सम्भव बिनु कर्म ॥ ८ ॥

8. Engage thyself in action, then,
Action before inaction goes,
Inactive thou, it won't suffice,
E'en to maintain thy body here.

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर: ॥९॥

यज्ञ छाँड़ि कै कर्म सब प्रतिबंधक हैं पार्थ!
फल की इच्छा त्यागि कै कर्म करहु यज्ञार्थ ॥ ९ ॥

9. The world is bound by Action fast,
Unless perform'd for Sacrifice,
Free from attachment, Kunti's son,
Perform thou action for that sake.

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥

यज्ञ सहित सब प्रजा रचि बोले पुनि करतार।
बढ़ौ यज्ञ तें यज्ञ ही अभिमत फलदातार ॥१०॥

10. Having in ancient times produced
Mankind along with Sacrifice,
Creation's Lord, then, said to them,
"By this ye shall attain to bliss."

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः।
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

देवन पोषौ यज्ञ तें तुमहुं पोषिहैं देउ।
एहि बिधि पोषत परस्पर बढ़ कल्यानहु लेउ ॥११॥

11. "With this nourish ye Shining Ones,
May Shining Ones nourish ye, too,
Thus each in turn supporting each,
Ye both shall win the Goal Supreme".

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

वांछित फल दैहैं तुमहिं देव यज्ञसन्तुष्ट ।
तिन्हैं दिये बिनु भोगिबौ चोरकर्म है दुष्ट ॥१२॥

12. Nourish'd by Sacrifice this way,
The Shining Ones will gifts bestow,
A veritable thief is he
Who takes from them without return.

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकिल्विषैः ॥
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥१३॥

यज्ञशिष्ट भोजन करत होत मनुज निष्पाप ।
खात सो पापी पाप ही पाचत जो लगि आप ॥१३॥

13. The righteous, too, who eat remains
Of Sacrifice, are freed from taint,
While those that dress their food for self,
Are said to eat and incur sin.

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

जीव अन्न तैं होत हैं अन्न मेह तैं होइ ।
मेह यज्ञफल है सदा यज्ञ कर्म फल जोइ ॥१४॥

14. From food all living things become,
From rain cometh the food they eat,
From Sacrifice doth rain proceed,
From Action springeth Sacrifice.

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

कर्म वेद सों होत है वेद हु अक्षरभूत ।
तातें सन्तत यज्ञ में व्यापक ब्रह्म अकूत ॥१५॥

15. Know thou that Action springs from
Brahm,
And Brahman from Supreme Essence,
Therefore the Deathless One abides
In Sacrifice for evermore.

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिंद्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

याविधि घूमत चक्र कों पार्थ ! न वर्तै जोइ ।
इन्द्रियरत पापी महा वृथा जियत है सोइ ॥ १६ ॥

16. The man who doth not follow here
The wheel that keeps revolving on,
His life is sin, his joy is sense,
That man, O Parth !, liveth in vain.

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

पर जो पारथ ! आत्मरत आत्मतृप्त नर होइ ।
आत्मा में ही लीन ह्वै कार्य न ताकों कोइ ॥ १७ ॥

17. But who rejoiceth in the Self,
And with the Self is satisfied,
Contented and with pois'd mind,
Nothing to do remains for him.

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

ताहि करे ना करे सों कछुक प्रयोजन नाहिं ।
नहिं स्वारथहू ताहि कौ भूतग्राम के माहिं ॥ १८ ॥

18. That man is not at all concern'd
With what is done or left undone,
Nor doth he here on aught depend,
Nor vested interests enjoy.

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

तातें बिनु आसक्ति के कार्यकर्म करु पार्थ !
अनासक्त जो करत है सो पावहि परमार्थ ॥ १९ ॥

19. Therefore let action be perform'd,
Without attachment to its fruit,
It should be done for Duty's sake,
This is the way to Goal Supreme.

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

कर्महि तें जनकादि हू पाइ गये सिधिधाम ।
तातें जगहित देखि कै करहु कर्म निष्काम ॥ २० ॥

20. Janak and others did attain
Perfection by performing deeds,
Then, with a view to help the world,
Thou also shouldst engage in work.

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

भद्र लोग जो करत हैं करत इतर जन सोइ ।
जो प्रमाण वे करत हैं मानत तेहि सब कोइ ॥ २१ ॥

21. Whate'er a great man doeth here,
Others begin to do the same,
The standard which he setteth up,
By that the Commons judge mankind.

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥२२॥

नहिं मोकों तिहुँ लोकमें कछु करिबेकों पार्थ ।
नहिं अलब्ध कौ लाभहू तदपि करहुँ परमार्थ ॥ २२ ॥

22. Nothing, O Parth!, in all the worlds,
There is that should be done by Me,
Nor anything that's to be gain'd,
Yet I in work engage, for e'er.

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतंद्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

जो कदापि आलस रहित कर्म न करों बनाइ ।
पार्थ ! सदा जनता अखिल मेरेहि मारग जाइ ॥ २३ ॥

23. For if I kept aloof from work,
Withdrawing Self from task in hand,
Men all around would follow Me
And tread My path, O Pritha's son!

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्तास्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

नाश होइँ ये लोक सब जो न करों मैं काज ।
संकर कर्ता मैं बनूँ नासूं सकल समाज ॥ २४ ॥

24. These worlds would into ruin fall,
If I abstain'd from action here,
And I should caste-confusion cause,
And slay all li ving things on earth.

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

जैसे मूरख करत हैं कर्म सदा आसक्त ।
बुधजन तैसे लोकहित ताकों करें विरक्त ॥ २५ ॥

25. As those that know not, Bharat's son !,
Attach'd to work, enact their part,
So wise men, unattach'd, should do,
Seeking the good of all mankind.

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

कर्मासक्त विमूढ़ कों नहिं मतिभेद कराइ ।
योगयुक्त बुध कर्म करि सर्व कर्म करवाइ ॥ २६ ॥

26. A sage should not perplex the mind
Of foolish men attach'd to work;
Discharging his appointed task,
Let him all action harmonise.

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

कर्म सदा सब होत हैं प्राकृत गुण अनुसार।
अहंकार वश मूढ़जन मानत मैं करतार ॥ २७ ॥

27. All actions are accomplish'd here
By Nature's qualities alone,
But self, by egoism misled,
Imagines "I perform the task."

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

गुण बर्तत हैं गुणन में अस मानत जो कोइ।
समुझि तत्त्व गुण कर्म को वह आसक्त न होइ ॥ २८ ॥

28. But he, O mighty-armed Chief!
Who knows essence of qualities,
And comprehends their functions, too,
From all attachment is exempt.

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जंते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मंदान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥२९॥

प्राकृत गुण के मोहवश बँध्यो कर्म के माहिं।
ऐसे को अलपज्ञ लखि बुध बिचलावै नाहिं ॥ २९ ॥

29. But those that in delusion dwell,
Become attach'd to worldly things,
A sage, therefore, should not disturb
The courses of ignorant men.

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धयस्व विगतज्वरः ॥३०॥

मोकों अर्पण कर्म करि आतम चित्त लगाइ ।
आशा ममता त्यागकै लड़हु ताप बिसराइ ॥ ३० ॥

30. Surrend'ring all thy acts to Me,
With thoughts all centred in the Self,
From hope and egoism releas'd,
Engage in battle, fever-heal'd.

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः ।
श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

एहि मेरौ मत मानि हैं पारथ ! मानव जोइ ।
श्रद्धायुत निन्दा रहित मुक्त कर्म तैं होइ ॥ ३१ ॥

31. Those who this teaching keep in mind,
Are full of faith and without guile,
They, too, from action ever freed,
Move, unattached, to worldly things.

ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

मम मत की निन्दा करत जो नहिं धारै कोइ ।
ताकों अज्ञानी समुझ वाकौ नाशहि होइ ॥ ३२ ॥

32. But those that carp at what I teach,
And do not act accordingly,
Bereft of sense and knowledge, too,
These mindless ones must come to grief.

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

बुधजन हूं बरतें सदा निज स्वभाव अनुसार ।
प्रकृत चलाये सब चलत इहां रोक बेकार ॥ ३३ ॥

33. E'en those who know the qualities,
Impell'd by Nature, acts perform,
For all must follow Nature's course,
To check it is a hopeless task.

इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वैषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥३४॥

राग द्वेष इन्द्रिन विषै सदा उपस्थित आहि ।
शत्रु मुमुत्तू के प्रबल तिन वश परिये नाहिं ॥ ३४ ॥

34. Affection and aversion both
Abide in objects of the sense,
Let none then be e'er influenced
By these foes that obstruct the path.

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

सुकृत पराये धर्म तैं विकृत भलौ निज कर्म ।
मरण श्रेष्ठ निजधर्म में भयदायक परकर्म ॥ ३५ ॥

35. Better one's duty, Arjun, though ill done
Than that of another, though well perform'd,
Better to die at one's own Duty's post,
Another's duty full of fear remains.

अर्जुन उवाच—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

अर्जुन ने कहा ।

केहि सों प्रेरित होइ नर पाप करत नित जोइ ।
बिनु इच्छा यदुराइ ! ज्यौं परवश खैंच्यौ होइ ॥ ३६ ॥

Arjuna said :—

36. "Prompted by what does man comm it
The deeds of sin, though not inclined,
And oftentimes against his will,
As if by force constrain'd, O Lord?"

श्रीभगवानुवाच—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

श्रीकृष्णभगवान् ने कहा ।

पार्थ ! काम यह क्रोध यह रज तें प्रकटत जोइ ।
महाखवोरा पापमय बुद्धि शत्रु हैं सोइ ॥ ३७ ॥

The Blessed Lord said :—

37. It is Desire and it is Wrath,
Product of passion, Pritha's son!
Devouring demon, foul, impure,
And all-consuming foe of man.

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

धूम ढकत है आग जिमि दर्पण कौं मल जैस ।
जरा ढकत जिमि गर्भ कौं ज्ञानहु कों वे तैस ॥ ३८ ॥

38. As flame is envelop'd by smoke,
As mirror is by rust obscured,
As babe is in the womb enwrapp'd,
So also is this girt by it.

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौंतैय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

ज्ञानी के यह शत्रु हैं ढकैं ज्ञान की जोत ।
कामरूप दुष्पूर यह पारथ ! अनल उदोत ॥ ३९ ॥

39. Enwrapp'd is Wisdom by this foe
Of the wise one, Desire named,
Which ever burneth like a flame,
Unquenchable, O Kunti's son!

इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

इन्द्रिय मन अरु बुद्ध हू बरने ताके ठाम ।
इनसों मोहित करत यह ढकिकर ज्ञान तमाम ॥ ४० ॥

40. The sense, the Reason and the mind
Are said to be its diff'rent seats,
And veiling Wisdom by their means,
It smites the dweller in the frame.

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

तातें प्रथमहिं पार्थ तुम इन्द्रिन वश कर लेउ ।
ज्ञान और विज्ञान के रिपु को वध करिदेउ ॥ ४१ ॥

41. Therefore, O best of Bharat's race!
Controlling senses first of all,
Kill thou this sinful thing outright,
Destructive of all Wisdom here.

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

इन्द्रिन कों पर कहत हैं इन्द्रिन पर मन मान ।
मन तें पर बुद्धी कही ताहि बुद्धि पर जान ॥ ४२ ॥

42. They call the human senses great,
Greater than senses is the Mind,
Greater than Mind is Reason, Parth !
Greater than that is the Supreme.

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

एहि प्रकार बुधि तैं परै जान ताहि कौ सार ।
महाबाहु ! थिर चित्त करि कामरूप रिपु मार ॥ ४३ ॥

43. Thus knowing Him, O mighty-arm'd !
Restraining self by Self amain,
Slay thou this Demon of Desire,
The foe which is so hard to kill.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

——::*::——

इति कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ओ३म् तत्सत्

——::*::——

Here Endeth The Third Discourse
Entitled
THE PATH OF ACTION.

अध्याय ४

श्रीभगवानुवाच—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् ने कहा ।

प्रथम भानु सों मैं कह्यौ जोग सनातन एहि ।
सूरज ने मनु सौं कह्यौ इक्ष्वाकू सौं तेहि ॥ १ ॥

The Blessed Lord said:—

1. This Yog that never perisheth,
To Vivaswan I taught at first,
By Vivaswan Manu was taught,
Manu to Ikshvaku declared.

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

राजर्षिन कों ज्ञात सो परम्परागत योग ।
कालचक्र बश दूसरे भूल गये सब लोग ॥ २ ॥

2. Thus handed down from age to age,
'Twas known to Royal Saints alone,
But now by great efflux of time,
This Yog is lost to sons of men.

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

वही पुरातन योग शुभ कह्यौ तोहि मैं आज।
यह रहस्य गम्भीर अति भक्त सखा के काज ॥ ३ ॥

3. That Yog divine, that ancient path,
This day I here declare to thee,
My loving devotee and friend,
Keep thou this secret well in mind.

अर्जुन उवाच—

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

अर्जुन ने कहा।

जन्म तिहारौ अब भयौ बहुत दिनन के भान।
केहि विधि जानूं तुमहि ने तासों करो बखान ॥ ४ ॥

Arjuna said:—

4. "Later, O Krishna ! was thy birth,
Earlier that of Vivaswan,
How am I then to understand
That thou didst declare it at first" ?

श्रीभगवानुवाच—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् ने कहा।

बहुतेरे अर्जुन ! भये जन्म मोर अरु तोर।
तिन्हें न जानत पार्थ तू विदित सकल ते मोर ॥ ५ ॥

The Blessed Lord said:—

5. Many a birth is left behind
By Me and thee, O Arjuna !
I know them all, O conqueror,
But thou dost not remember them.

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

जन्मरहित भूतेश हू अरु अक्षीण स्वभाव।
वश में करि निज प्रकृति कों माया सों मम भाव ॥ ६ ॥

6. Unborn, eternal, though I am,
And Lord of all created things,
Presiding over Nature's course,
Yet am I born thro' pow'r of Mine.

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

जब जब भारत ! होत है कितहुँ धरम की हार।
अरु अधरम की जीत तब आवत बारंबार ॥ ७ ॥

7. Whene'er Righteousness declines,
And Wickedness prevails uncheck'd,
On such occasions, Bharat's son !
I manifest Myself on earth.

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

रक्षणार्थ संतन सुजन अरु दुष्टन संहार।
धर्मथपनहित लेत हौं युग युग मैं औतार ॥ ८ ॥

8. For the protection of the good,
For the destruction of the bad,
For firmly planting Righteousness,
I come, O Parth ! from time to time.

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

जन्म कर्म मम दिव्य हैं अस जानत जो कोइ ।
तनु तजि पावत मोहि कों जन्म फेर नहिं होइ ॥ ९ ॥

9. Whoso thus knows My birth divine,
And action in their prime essence,
His frame cast off, ne'er goes to birth,
He cometh, Arjun, unto Me.

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

मद्गत आश्रित मोहि में वीतरागभयक्रोध ।
पाय गये मम भाव कों बहुत पाइ करि बोधि ॥ १० ॥

10. From passion, fear and anger freed,
Absorb'd in Me, and fill'd with love,
Many have enter'd My abode,
By fire of Wisdom purified.

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

मोकों जो जैसे भजै मैं हुं भजत त्यों ताइ ।
सभी लोक कुन्तीतनय ! मेरे मारग जाइ ॥ ११ ॥

11. However men approach Me, Parth,
Thus even do I welcome them,
For diff'rent paths that people tread
Their common centre find in Me.

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

देवन की पूजा करहिं इहां सिद्धि के हेत ।
पारथ ! सुनु एहि लोक में कर्म शीघ्र फल देत ॥ १२ ॥

12. Those that in action seek success
Worship the Shining Ones on earth,
For, quickly, in this world of men,
Success is born of action done.

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

गुण अरु कर्म विभाग तें वर्ण रचे मैं चार ।
यद्यपि ये मैंने किये तदपि न मैं करतार ॥ १३ ॥

13. By Me, the fourfold caste was made,
On Quality and Action based,
Know Me to be their author, too,
Unbound by action though I am.

न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बद्ध्यते ॥१४॥

कर्म मोहि लिपटत नहीं नहिं फल इच्छा होइ ।
जो मोकौं अस जानते कर्मबद्धि नहिं सोइ ॥ १४ ॥

14. Nor do the actions bind Myself
Nor is their fruit desired by Me,
He who thus knoweth Me, forsooth,
Is never bound by action here.

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

पूर्व मुमुक्षुनहू किये सदा कर्म अस जान ।
तातें तुमहू कर्म ही करहु विहित मतिमान ॥ १५ ॥

15. Having thus known, our elders, too,
Seeking salvation, acts perform'd,
Therefore, do thou, O Pritha's son!
As did our sires in olden times.

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥१६॥

का अकर्म का कर्म है बुधजन इहां भुलाइ ।
छुटहु अशुभ तें जानि जिहि सो मैं देहुँ बताइ ॥ १६ ॥

16. What action and inaction are,
E'en sages do not know full well,
Therefore to thee I will declare
The secret that will set the free.

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

कर्महु जानन जोग है तथा विकर्म अकर्म ।
कर्मन की गति गहन है दुर्गम अति एहि धर्म ॥ १७ ॥

17. 'Tis needful one should understand,
What action and inaction are,
Unlawful action too, O Parth!
Mysterious is the action's path.

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

लखत अकर्महिं कर्म में अरु अकर्म में कर्म ।
बुद्धिमान सोइ जनन में जानत है सब मर्म ॥ १८ ॥

18. Who in inaction action sees,
Inaction in the action too,
He is sage among mankind,
He is in harmony with all.

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥१९॥

छाँड़ि काम संकल्प कों करत कर्म सब जोइ ।
जारि कर्म ज्ञानाग्नि में बुद्ध कहावत सोइ ॥ १९ ॥

19. Whose thoughts are free from all desire,
Whose acts are burnt by Wisdom fire,
Him wise men call a sage divine,
He is the crown of all on earth.

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥२०॥

त्यागि कर्मफलसंग कों करत कर्म सब जोइ ।
नित्यतृप्त आश्रय विना नाहिं करत कछु सोइ ॥ २० ॥

20. Aband'ning all attachment to
The action's fruit, and satisfied,
Although performing actions here,
He is not bound by its effects.

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥

आशा तजि यतचित्ततन त्यागि परिग्रह जोइ ।
कर्म करत तन लागि ही ताकों पाप न होय ॥२१॥

21. Hoping for nothing here below,
With mind and self complete controll'd.
From greed and avarice exempt,
Acting by body, doth not sin.

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबद्ध्यते ॥२२॥

जो पावै तामें सुखी द्वन्द्व न मत्सर जाइ ।
सिद्धि असिद्धि समान लखि कर्मबन्ध नहिं ताइ ॥२२॥

22. Content with whatsoe'er he gets,
Free from the pair of opposites,
Balanced in success and failure,
Engaged in action, he's unbound.

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

संग वासना रहित अरु ज्ञानस्थित चित जोइ ।
यज्ञहेत कर्त्ताहु कौ कर्म सकल लय होइ ॥२३॥

23. Attachment free, emancipate,
With thoughts in wisdom firmly fix'd,
His actions, done for sacrifice,
Whate'er he does, all melts away.

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

ब्रह्मस्रुवादिक ब्रह्म हवि ब्रह्म अगिन होतार ।
ब्रह्मकर्म तैं नियम करि ब्रह्म लहब करतार ॥२४॥

24. Eternal the oblation is,
Eternal butter clarified,
Eternal fire and off'ring too,
Eternal goal of every deed.

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

देवयज्ञ कोउ करत हैं योगी जन शुचि होइ ।
यज्ञहिं तैं ब्रह्मागिन में यज्ञहि होमत कोइ ॥२५॥

25. Some yogis sacrifice offer,
To Shining Ones with hearts devout;
While others sacrifice perform,
By pouring in celestial fire.

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥

श्रवणादिक इन्द्रियन कों कोउ संयम के द्वार ।
होमत शब्दादिक विषय इन्द्रिय अगिन मझार ॥२६॥

26. Some pour the sense of hearing, too,
Into the fire of self-restraint,
While others yet, sense-objects pour,
Like sound, into the fires of sense.

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

कर्म प्राण इन्द्रियन के सब ही होमत कोइ।
आतमसंयम वह्नि में ज्ञानप्रकाशित जोइ ॥२७॥

27. Others again pour functions all,
Of senses and of life, forsooth,
Into the Wisdom-kindled fire,
Of union gain'd by self-control.

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

द्रव्ययज्ञ कोउ करत हैं योगयज्ञ हू कोइ।
ज्ञानयज्ञ तपयज्ञ कोउ श्रुतिपाठी कोउ होइ ॥२८॥

28. Yet others pour as sacrifice,
Riches and Yoga and penance,
Wisdom and silent reading too,
Such men are men of steadfast vows.

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥

हुतहिं अपानहिं प्रान में कोउ अपान में प्रान।
प्राणायामी होइ करि रोकत प्रान अपान ॥२९॥

29. Yet other merge outgoing breath
Into the one that inward goes,
And *vice versa* checking flow
Of these, engaged in breath-control.

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

कोउ कोउ मित आहार करि धरत प्रान बिच प्रान ।
जाननहारे यज्ञ के यज्ञपूत तिन्ह जान ॥३०॥

30. Others in eating self-controll'd
Pour life-breaths into life-breaths, too,
All these know what is sacrifice,
By sacrifice they sins destroy.

यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ।
नायंलोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

ब्रह्म सनातन लहत ते यज्ञ बच्यौ जे खाहिं ।
और अयज्ञन कों कहाँ यह नरलोकहु नाहिं ॥३१॥

31. Feeding on sacrifice-remains,
They reach the deathless Brahman, sure,
Non-sacrificer's not this world,
Much less the other, Kuru's son!

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥३२॥

एहि विधि यज्ञन के बहुत वेद बखाने नाम ।
इन सबकों कर्मज समुझि पावोगे परधाम ॥३२॥

32. Thus many a kind of sacrifice,
In Vedas, Arjun, is declared,
Know thou them all of action born,
This knowledge gain'd will set thee free.

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

उत्तम तू धनयज्ञ तें ज्ञानयज्ञ ही मानं ।
ज्ञानहि में सब कर्म की पार्थ ! सफलता जान ॥३३॥

33. Better than any sacrifice,
Is Sacrifice of Wisdom, sure,
All actions in their fulness, here,
In Wisdom culminate, O Parth!

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

ताकों जानब विनयतें पूछि सहित सन्मान ।
तत्त्वदर्शि ज्ञानी तुम्हें उपदेशहिं वहि ज्ञान ॥३४॥

34. Learn thou this by discipleship,
By queries and by service, too,
The wise who see essence of things
Will instruct thee in Wisdom sound.

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

जाहि जान के पार्थ ! सुनु मोह न पुनि अस होइ ।
जातें मो में आपु में लखिहौ तुम सब कोइ ॥३५॥

35. And knowing this, O Pandu's son!
Thou shalt not in confusion fall,
For by this thou shalt see in self,
Reflection of the things that be.

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥३६॥

सब पापिन सों अधिकतर जो तू पापी होइ ।
अघसागर तें तउ तरहि ज्ञानपोत दृढ़ जोइ ॥३६॥

36. E'en if thou chief of sinners be,
And deep immers'd in deadly sin,
Yet shalt thou cross o'er, Pritha's son !
By means of Wisdom-raft, indeed.

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

जैसे जरती अगिन में काठ भसम हुइ जाइ ।
तैसे ही सब कर्म हू ज्ञान अनल कों पाइ ॥३७॥

37. As burning fire reduces wood,
Turning the same to ashes pure,
So doth, O Arjun, Wisdom fire,
Reduce to ashes actions all.

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥३८॥

ज्ञान समान पवित्र कोउ अन्य वस्तु जग नाहिं ।
लहत समय पर आपुही योगसिद्ध निज माहिं ॥३८॥

38. There is no purifier, Parth !
Like Wisdom in this world of men,
Who seeketh it shall find it sure,
In his own self in season due.

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः ।
ज्ञानंलब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥३६॥

तत्पर इन्द्रियजित्त तथा श्रद्धायुत लह ज्ञान ।
ज्ञान पाइ तुरतहि लहत सो जन शान्ति महान ॥३९॥

39. The person who is full of faith
Obtaineth Wisdom without fail,
As also he who sense controls,
Obtaining Wisdom, peace attains.

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

अज्ञानी श्रद्धारहित संशयचित नसि जाइ ।
ना यहि लोक न पर न सुख कबहु मिलत है ताइ ॥४०॥

40. But ignorant and faithless men,
Doubting the self, must come to grief,
Neither this world nor that beyond,
Nor happiness they ever find.

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥४१॥

त्यागि कर्म सब योग तें ज्ञानछिन्न संदेह ।
आत्मवन्त बिच कर्म नहिं करिहैं पारथ गेह ॥४१॥

41. He who hath acts renounc'd by Yog,
And doubt dispell'd by Wisdom's light,
And who is by the self controll'd,
Him actions do not bind at all.

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥

तातैं भारत ! काटिकरि ज्ञानकृपाण चलाइ।
संशय कौं उठि युद्ध कौं योग रीति कौं पाइ ॥४२॥

42. Therefore cleaving asunder doubt,
Ignorance-born, O Bharat's son !
With Wisdom-sword, be firm in Yog,
And stand thou up, be bold, arise.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञान-योगो नाम चतुर्थोध्यायः ॥४॥

——::०::——

इति ज्ञानयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥
ओ३म् तत् सत्

——::*::——

Here Endeth The Fourth Discourse
Entitled
THE PATH OF KNOWLEDGE.

——::*::——

अध्याय ५

अर्जुन उवाच—

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥१॥

अर्जुन ने कहा ।

कर्मत्याग अरु योग दोउ कृष्ण बतावत मोइ ।
इन्ह में निश्चय करि कहौ जो श्रेयस्कर होइ ॥ १ ॥

Arjuna said:—

1. O Krishna, praisest Thou at once,
Surcease of work, service through it,
Pray, tell me now for certainty,
Which of the two superior is.

श्रीभगवानुवाच—

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥

श्रीभगवान् ने कहा ।

कर्मयोग संन्यास दोउ मोच्छ मार्ग यहि जान ।
ताहू पै संन्यास तें कर्मयोग बड़ मान ॥ २ ॥

The Blessed Lord said:—

2. Surcease of work and its pursuit
Both lead a man to highest bliss,
But of the twain, pursuit of works
Is better than renouncing deed.

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वंद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥३॥

नित संन्यासी जानु तेहि जाके द्वेष न चाह ।
द्वन्दरहित वहि बन्ध तें छूटत सहित उछाह ॥ ३ ॥

3. A true renouncer is the man
Who neither hates nor craves at all,
Exempt from pair of opposites,
He's free from bonds, O mighty-arm'd.

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पंडिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥४॥

सांख्ययोग न्यारे कहहिं बालक, पण्डित नाहिं ।
एकहु में जो दृढ़ रहै दोउन कौ फल ताहि ॥ ४ ॥

4. Children, not sages, look upon
Sankhya and Yog as diff'rent things,
He who is rooted firm in one,
Obtaineth fruits of both in time.

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

सांख्यन को जो प्राप्य है योगीहू तेहि पाइ ।
सांख्ययोग जो एक ही देखैं तिनहि दिखाइ ॥ ५ ॥

5. The place which is by Sankhyas gain'd
Is surely reach'd by Yogins, too,
Who seeth that the Sankhya and Yog,
Are one in essence truly sees.

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥६॥

सांख्य महाभुज ! योग बिनु है दुष्प्राप्य महान ।
कर्मयुक्त मुनि ब्रह्म कों शीघ्र लेत पहिचान ॥ ६ ॥

6. But without Yog, O mighty-arm'd !
Renunciation's hard to gain,
The hermit harmonised by Yog
Attaineth to the Goal Supreme.

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

कर्मयुक्त मन वच विमल इन्द्रियजित जो होइ ।
सर्वभूतहितरत सदा करतहु लिप्त न सोइ ॥ ७ ॥

7. He who is harmonised by Yog,
Pure-hearted, self-restrain'd, subdued,
Whose self is Self of everything,
Although engaged, is free from taint.

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥८॥

मैं तो नहिं कुछ करत हों बुध मानै यहि बात ।
लखत सुनत छूअत सुंघत खात चलत निद्रात ॥ ८ ॥

8. "I do not anything at all,"
So should he think who knows the Truth,
And whilst he hears, or sees, or smells
Or touches, moves, or eats, or sleeps,

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्तंत इति धारयन् ॥९॥

श्वास लेत बोलत तजत पकरत खोलत नेत्र ।
मूँदत पुनि इन्द्रिन लखत वर्तत निज निज क्षेत्र ॥ ९ ॥

9. Or breathes, or speaks, or gives, or grasps,
Or opes, or shuts his eyelids twain,
His earnest thought for ever is,
"The senses 'mong their objects move."

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥१०॥

ब्रह्मसमर्पण कर्म करि करै जो फल को त्याग ।
कमलपत्र ज्यों वारि बिच रहै सदा बेलाग ॥ १० ॥

10. He who is thus engaged in work
With all his actions merged in Brahm,
Untouch'd by sin remaineth he,
Like lotus leaf by water drops.

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिंद्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ॥११॥

केवल तन मन बुद्धि तैं वा इन्द्रिन तैं जोइ ।
शुद्धिहेत उद्यम करै निश्चय योगी सोइ ॥ ११ ॥

11. The Yogins from attachment free,
Act by the body and the mind,
By Reason and the senses, too,
And in this way are purified.

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

योगी तजिके कर्मफल पावत शान्ति महान ।
इच्छाफल में सक्त नर पड़ते बन्धन आन ॥ १२ ॥

12 A sage aband'ning actions' fruit
Attaineth to eternal peace,
But he who is not harmonised,
Attach'd to action, bound remains.

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

मन तैं तजि सब कर्म कों वशी सुखी हुइ जाइ ।
करत करावत कछु नहीं नवदुवारपुर पाइ ॥ १३ ॥

13. Renouncing actions all by mind,
The sovereign dweller in the frame
Resteth serenely in the town,
With portals nine, and unattach'd.

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

नहिं कर्ता नहिं कर्मफल सृजत लोक को ,नाथ ।
नाहिं कर्मफल योग हू, रहत स्वभावहि साथ ॥ १४ ॥

14. The Lord of worlds produceth not
Action or agency or bond
That binds the action to its fruit,
But Nature runs its course along.

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥१५॥

प्रभु न लेत काहुक सुकृत नाहिं लेत है पाप।
ज्ञान ढक्यो अज्ञान तैं मोहत प्राणी आप॥ १५॥

15. The Lord is ever free from taint
Of merit and demerit both,
But folly darkens knowledge here
Thus mortals in delusion dwell.

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

जिनकौ ज्ञानप्रदीप तैं वह अज्ञान नसात।
पारथ ! तिनके हृदय बिच ज्ञानभानु चमकात॥ १६॥

16. In whom the darkens of the soul
Is chased by Light of Wisdom clear,
To him Sunlight of Kowledge true
Reveals the path to Goal Supreme.

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

तामें निष्ठा बुद्धि रखि तत्पर हुइ तद्रूप।
ज्ञान नष्ट कल्मष लहैं अनावृत्ति को रूप॥ १७॥

17. Thinking on that and merged therein.
Intent on that as highest theme
They go from whence is no return,
Their sins dispell'd by Wisdom's light,

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥१८॥

विद्या अरु आचारयुत ब्राह्मण गौ कर श्वान।
और श्वपाकहु में सदा पण्डित जन सम जान ॥ १८ ॥

18. To him who wisely sees are one,
The Brahman with his lore and love,
The cow, the elephant, the dog,
The dog's-flesh-eater and outcast.

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्मतस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१९॥

जीवत वे जीतहि जगत जिनको मन सम होइ।
ब्रह्म सदा निर्दोष है ताही में थित सोइ ॥ १९ ॥

19. E'en here on earth all things are gain'd
By those that keep balance of mind,
Brahman is ever free from taint,
Therefore they find full rest therin.

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

प्रियहु पाइ हर्षे न जो अप्रिय सों न दुखाइ।
थिरमति ज्ञानी ब्रह्मविद ब्रह्मलीन हुइ जाइ ॥ २० ॥

20. With Reason firm and unperplex'd,
And rooted deep in the Supreme,
The knower of the Brahman, sure,
Rejoiceth not, nor feeleth pain.

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥२१॥

अनासक्त जो विषय में आतम में सुख पाइ।
ब्रह्मयुक्त आनन्दलह सो सुख कबहुँ न जाइ॥ २१ ॥

21. With self from outer contact freed,
With soul in Brahman deeply merged
And harmonised by Yog divine,
He doth enjoy unending bliss.

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

विषय भोग दुखमूल हैं परस मात्र तिन्ह जान।
नाशमान कुन्ती तनय! नाहिं रमत मतिमान॥ २२ ॥

22. All pleasures that are contact-born
Are surely wombs of pain intense,
As these delights begin and end,
The wise rejoice not in them.

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥२३॥

देहपात के पूर्व ही जो सहि लेत सुधीर।
काम क्रोध के वेगकों वहि सुख पावत वीर॥ २३ ॥

23. Whoso is able to endure,
Ere casting off his mortal coil,
The force of passion and desire,
He is indeed a happy man.

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

सुख विश्राम प्रकाश जो निज आतम बिच पाइ ।
ब्रह्मरूप हुइ युक्त सो ब्रह्महिं बीच समाइ ॥ २४ ॥

24. He who is harmonised, attuned,
With Wisdom's light is lit within,
That Yogin, thus transform'd to Brahm,
Enjoyeth everlasting bliss.

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

पापमुक्त हुइ मुनि सदा लहत ब्रह्मनिर्वान ।
गतसंशय यतचित्त जो ताकों सबहि समान ॥ २५ ॥

25. The wise obtain eternal rest,
Of sin completely purified,
Their doubts all gone, their self subdued;
Their aim the good of all mankind.

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

कामक्रोध सों रहित अरु वशी विमलचित जोइ ।
आतम कों पहचान के ब्रह्म निकट रह सोइ ॥ २६ ॥

26. The peace of Brahman is not far
From those that know the self within,
Who are from lust and anger freed,
Subdued, restrain'd and well-attuned.

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥

बाह्य विषय कों बाह्य करि भ्रू बिच दृष्टि लगाइ ।
प्राण अपान समान करि जो नथनन बिचजाइ ॥२७॥

27 Excluding all outer contact,
With gaze between the eyebrows fix'd,
And pois'd, too, the breath that moves,
Within the nostrils, in and out.

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

इन्द्रिय मन बुधि रोकिकै मोक्षपरायण जोइ ।
बिगतक्रोधभयकामना सदा मुक्त सो होइ ॥२८॥

28. With sense and mind and Reason pois'd,
Seeking lib'ration from the bond,
The sage from fear and passion freed,
Casting desire, full peace attains.

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति ॥२९॥

भोगी जप तप यज्ञ कौ जानत है जो मोइ ।
लोकनाथ जगमित्रहू शान्ति लहत है सोइ ॥२९॥

29. And knowing Me as one who does
Enjoy the fruit of sacrifice,
The mighty Ruler of the worlds,
Lover of all, he goes to rest.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यास-योगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

——::*::——

इति संन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ओ३म् तत् सत्

——::*::——

Here Endeth The Fifth Discourse
Entitled
THE PATH OF RENUNCIATION

——::*::——

अध्याय ६

श्री भगवानुवाच—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा ।

कार्य कर्म कों जो करै त्यागि कर्मफल भार ।
संन्यासी योगी वही नहिं निरगिन बेकार ॥ १ ॥

The Blessed Lord said:—

1. He who performeth action here,
Not longing for its fruit at all,
He is a Yogi unattach'd,
Not he that's fireless, without work.

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

कह्यो पार्थ ! संन्यास जो ताहि योगहू मान ।
जो संकल्पहि नहिं तजत योगी हू मत जान ॥ २ ॥

2. What they renunciation call
Is one with Yog, O Pandu's son !
No one a Yogi can become,
Without renouncing action's fruit.

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

कर्मंहि साधन होत है योगप्राप्ति लगि पार्थ !
योग प्राप्तिकर शमन पुनि कारण होत यथार्थ ॥ ३ ॥

3. And for a Sage in quest of Yog,
Action is call'd the means thereof,
While for the same enthroned in it,
'Tis said, the means is quiescence.

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥

इन्द्रियार्थ अरु कर्म में जो आसक्त न होइ ।
तजै सर्व संकल्पहू युक्त कहावै सोइ ॥ ४ ॥

4. When no attachment does he feel,
For action or for things of sense.
Renounces all formative will,
Then is he call'd the Yog-enthron'd.

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

मन तें मन कों उद्धरै कबहुँ न ताहि गिराइ ।
मनही मनकौ मित्र है मनहि शत्रु हुइ जाइ ॥ ५ ॥

5. Let him then raise the self by Self,
Let not the self become depress'd,
For truly Self is friend of self,
As Self is foe of self, indeed,

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

जो जीतै मन तें मनहिं सो मन बन्धु कहाइ ।
अनजित मन रिपुता करै दुखदाई हुइ जाइ ॥ ६ ॥

6. The Self is friend of self to him,
Who has subdued his inner self,
But to the self that's unsubdued,
The Self is sure an enemy.

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥७॥

शान्त जितेन्द्रिय पुरुष कों परमात्मा दरसात ।
शीत उष्ण सुख दुख नं कछु ताकों कबहु सतात ॥ ७ ॥

7. The self of him, O Pritha's son !
Who is serene, is pois'd well,
Is uniform in heat and cold,
In shame and honour, grief and joy.

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥८॥

तृप्तज्ञानविज्ञानमन होइ जितेन्द्रिय धीर ।
माटी पाथर स्वर्ण सम युक्त कहावत वीर ॥ ८ ॥

8. That Yogi harmonised is call'd,
Content with knowledge and with self,
To whom a clod, a stone and gold,
Are all alike, O Kunti's son !

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

सुहृद मित्र मध्यस्थ रिपु उदासीन बिच जासु।
साधु पाप बिच बुद्धि सम गनहु श्रेष्ठता तासु ॥ ९ ॥

9. He who regardeth all alike
Lovers and friends and enemies,
Neutrals, relations, foreigners,
Righteous, unrighteous, he excels.

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

एकाकी यतचित्त अरु आश परिग्रह हीन।
युक्त करै नित चित्त कों निर्जन में आसीन ॥१०॥

10. Let Yogi then compose his mind,
Remaining in a lonely place,
With thought and self complete subdued,
And free from hope and avarice.

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

शुचि प्रदेश में थापिके आसन ठीक जमाइ।
बहुत न ऊंच न नीच कुश अजिन वस्त्र फैलाइ ॥११॥

11. Choosing a place perfectly pure,
Neither too lofty nor too low,
Establish'd on a seat secure,
Of cloth, and skin and kusha grass;

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

तहँ मन कों एकाग्र करि मन तें इन्द्रिन थाम।
आत्मशुद्धि लगि बैठि तहँ योग करै निष्काम॥१२॥

12. There having well composed the mind,
With thought and function all subdued,
And seated firmly, harmonised,
Let him his self by Yog illume.

समं कायशिरो ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेच्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

काया शिर ग्रीवा अचल धारि और थिर होइ।
निज नासाग्रहि लक्ष्य करि दिश न विलोकै जोइ॥१३॥

13. Body and head and neck erect,
Immovable and firmly fix'd,
His gaze on nose-tip planted well,
And not allowed to roam at large;

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

शान्तचित्त निर्भय सदा ब्रह्मचर्य व्रत लीन।
मन संयम करि चित्तकों मो में करि लवलीन॥१४॥

14. At peace with self, and free from fear,
Observing vow of continence,
The mind restrain'd, and full of faith,
Let him, attuned, be lost in Me.

युंजन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

योगी ऐसे चित्त कों करत योग आधीन ।
मोकों परम प्रधान गिन रहै युक्त आसीन ॥१५॥

15. United thus with self within,
With mind and senses well controll'd,
The Yogin gains unending bliss,
And evermore abides in Me.

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

बहुभोजी भोजनरहित अर्जुन! अरु जो कोइ ।
स्वप्नशील निद्रारहित तिनकों योग न होइ ॥१६॥

16 A glutton is not fit for Yog,
Nor one who underfeeds himself,
Nor yet the man who sleepeth much,
Nor one to wakefulness resign'd.

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

सम आहार विहार सम चेष्टा कर्मन माहि ।
स्वप्न बोध सम दुःखहर पार्थ योग हो ताहि ॥१७॥

17. The man who regulates himself,
In food and rest and merriment,
In action, sleep and waking, too,
Attains to joy that killeth pain.

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहःसर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

आत्मा में ही चित्त जब अतिशय निश्चल होइ ।
सर्व कामनारहित तब युक्त कहावत सोइ ॥१८॥

18. When on the self is fix'd his thought,
When freed is he from all desire,
When mind's subdued, and sense controll'd
Then is he harmonised full well.

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥१९॥

दीपक ज्यों निश्चल रहै जहाँ पवन नहिं जाइ ।
सो उपमा यतचित्त की आत्मयोग कों पाइ ॥१९॥

19. As in a windless place, a lamp
Keeps up its flame and flickers not,
Such also is a Yogi true,
Immers'd in Yoga of the self.

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

योग रीति सों रुद्ध चित जहाँ लेत विश्राम ।
आत्मा में सन्तुष्ट जहँ लखि कर आत्माराम ॥२०॥

20 In which the mind doth find its rest,
Becalm'd by constant practice here,
In which he, seeing self by Self,
With Self is fully satisfied,

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

जहां अलौकिक सुख मिलै जो इन्द्रिन तैं दूर ।
जहँ थित हटि नहिं तत्त्व सों हुइहै चकनाचूर ॥२१॥

21. In which he findeth joy supreme
Which only Reason can secure,
Which lies beyond, the reach of sense,
Wherein establish'd, moveth not,

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

जाकों लहिकर मनुज कों और न लाभ पसंद ।
जा में थिर हुइ कबहु नहिं परत दुःख के फंद ॥२२॥

22. Which having gain'd, he feeleth sure,
There is no greater gain beyond,
Wherein establish'd, firmly, whom
No sorrow shaketh in the end,

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा ॥२३॥

जो वियोग दुखयोग को योग जानिये ताइ ।
ताहि लहहु निर्वेद बिन निश्चित चित्त लगाइ ॥२३॥

23. That should be known as Yoga true,
From sorrow's tinge perfectly free,
This Yoga should be firmly grasp'd,
With cheerful, undesponding mind.

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥२४॥

सबहिं कामना त्याग करि जो उपजे मन माहिं।
इन्द्रियगण कों रोकिकै मन तें चारहु ठाहिं ॥२४॥

24. Aband'ning all desires born
Of thought for self, without reserve,
And by the mind controlling all
The senses in their aggregate;

शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥२५॥

धीरै धीरै उपरमै बुधि तै लहि विश्राम।
आतम बिच मनकों धरै चिन्तन सो नहिं काम ॥२५॥

25. Let him internal quiet gain,
With gradual steps, with Reason's aid,
And making mind abide in Self,
Let him not think of aught at all.

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

जब जब मन दौरै कितहुँ चंचल अस्थिर होइ।
तब तब तुरतहिं रोकिकै आतमवश कर सोइ ॥२६॥

26. As often as the wav'ring mind
Inclines to wander unrestrain'd,
So often let him rein it in,
And bring it under Self's control.

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

शान्त होत मन जाहि कौ सो योगी सुखयुक्त ।
बिगतरजस निर्मल विमल ब्रह्मभूत अघमुक्त ॥२७॥

27. That Yogi gains unending bliss,
Whose mind is full of quiescence,
Whose passion-nature is subdued,
Who sinless is, and merged in Brahm.

युंजन्नेवंसदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥२८॥

यों योगी उद्यम करत मन कों सदा लगाइ ।
पापरहित अरु ब्रह्मरत शान्त अमित सुख पाइ ॥२८॥

28. Thus gaining harmony with self,
His sins all wash'd away, for e'er,
The Yogi bliss supreme attains,
And joy of contact with Brahman.

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

आपुन कों सब जीव में सबकों आपुन माहि ।
देखत योगी युक्तमन समदर्शी लखु ताहि ॥२९॥

29. The self, thus harmonised by Yog,
Seeth the Self in ev'rything,
And seeing everything in Self,
Looks equally on ev'rything.

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

जो मोकों सब में लखै लखै सबहि मो माहिं।
मैं अलभ्य नहिं ताहिकों सोउ अलभ्य मोइ नाहिं ॥३०॥

30. Everywhere who seeth Me,
And everything in Me beholds,
Of him I never lose the hold,
And he will never lose My own.

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

सब प्राणिन बिच जान मोइ भजै एकता पाइ।
सो योगी मोमें बसै कबहूँ नहिं बिलगाइ ॥३१॥

31. Whoso, in Oneness rooted firm,
Worships Me as the Soul of all,
That Yogi sure abides in Me,
Whate'er his mode of living be.

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

अर्जुन ! जो सुख दुख लखत सबके आपु समान।
सब में जो समता लखै योगी परम सुजान ॥३२॥
32. Whoso, thro' likeness of the Self,
Observes equality in all,
Pleasant or painful minding not,
A perfect Yogi, he is call'd.

अर्जुन उवाच—

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥

अर्जुन ने कहा।

मधुसूदन! यह आपुने कह्यो जो समता योग।
ताकी थिर गति नहिं लखौं चंचलता संजोग ॥३३॥

Arjuna said:—

33 "But for this Yog of Evenness,
Which Thou hast taught, O Madhu's foe!
I fail to see a basis firm,
Owing to restlessness of mind.

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

इन्द्रियक्षोभक दृढ़ बली मन चञ्चल है तात!
ताहि पवन सम रोकिबो मोकों कठिन लखात ॥३४॥

34. "Fickle, O Krishna, is the mind,
Impetuous, strong, and wilful, too,
To curb it is a task as hard
As to control the wayward wind".

श्रीभगवानुवाच—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

श्रीभगवान् ने कहा।

मन चल दुर्निग्रह अहै जामें नहिं संदेह।
तउ अभ्यास विराग तें रोक सकत हैं तेह ॥३५॥

The Blessed Lord said.—

35. No doubt, O Mighty-armèd One,
The mind is hard to hold in check,
Yet it may be restrain'd, O Prince!
By practice aud by unconcern.

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

अजित चित्त कों योग यह पारथ ! दुर्लभ जान ।
जो मन वशकर यतत हैं तिनकों है आसान ॥ ३६ ॥

36. Yoga is also hard to win,
Methinks, by one that's unsubdu'd,
But by the self that is restrain'd,
It may by proper means be gain'd.

अर्जुन उवाच—

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७॥

अर्जुन ने कहा—

अयती श्रद्धायुतहु जो योगभ्रष्ट हुइ जाइ ।
योग सिद्ध नहिं पाइकै कृष्ण ! कौन गति पाइ ? ॥ ३७ ॥

Arjuna said:—

37. "He who is full of faith, O Krishn !
But lacks control and does not try,
And fails to reach perfection here,
What path doth such a person tread ?

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

दौनों हूं तैं भ्रष्ट हुइ फाट्यो जलद समान ।
अबुध काह वह नसैगो ब्रह्ममार्ग अज्ञान ॥ ३८ ॥

38. "Fallen from both is he undone
And scatter'd like a riven cloud,
Unsteadfast, O Thou mighty-arm'd !
Deluded in the path of Brahm ?

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता नह्युपपद्यते ॥३९॥

यह सब संशय कृष्ण तुम काटो दुखहंतार !
तुम बिनु या संदेह कौ कोउ न छेदनहार ॥ ३९ ॥

39. "Be pleased, O Krishna, to dispel
This doubt which doth assail my mind,
Since none save Thou can clear the same,
Fain would I hear Thee answer me."

श्रीभगवानुवाच—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

श्रीभगवान ने कहा ।

पार्थ ! न इह नहिं और कहुँ नाश ताहिकौ होइ ।
दुर्गति पावत तात नहिं शुभकर्त्ता जग कोइ ॥ ४० ॥

The Blessed Lord:—

40. In neither world, O Pritha's son !
Doth such a soul e'er come to grief,
For none who worketh righteousness
Doth tread the path of loss or pain.

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

दिव्यलोक में रमण करि कल्प अनेक बिताइ ।
जन्मत शुचि श्रीमन्त गृह योगभ्रष्ट पुनि आइ ॥ ४१ ॥

41. Having attain'd to regions high,
And dwelling there for ages long,
He who from Yoga falls away,
In pure and blessed house is born,

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

बुद्धिमान योगीन के कुल में अथवा होइ ।
अस सम्भव अति कठिन है सहज न पावत कोइ ॥ ४२॥

42. Or he may yet be born again,
Into a Yogi's house, O Prince !
But such a birth is rare, indeed,
Nay, most difficult, to obtain.

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥४३॥

तहाँ लहत अभ्यास तैं पूर्व बुद्धिसंजोग ।
तब कुरुनन्दन ! फिर करत सिद्धिहेत सो योग ॥ ४३ ॥

43. There he the qualities attains
Belonging to his former life,
Equipp'd with which he tries again
To win perfection, Kuru's son !

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥४४॥

बिबस पूर्वअभ्यास तें खिंचत योगयुत सोइ ।
पार योगजिज्ञासु सो शब्दब्रह्म तैं होइ ॥ ४४ ॥

44. By former practice swept away,
And irresistibly impell'd,
Though merely wishing Yog to know,
He gets beyond the Cosmic Plane.

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

यत्न करत यतमानहू योगी पापविमुक्त ।
जन्म जन्म अभ्यास तें लहत परमपद युक्त ॥ ४५ ॥

45. And fortified in mind and will,
And purified from taint of sin,
The Yogi here thro' many births
Reaches at last the Goal Supreme.

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

तपसिन तें योगी अधिक ज्ञानिन हूं तें सोउ ।
कर्मिन हूं तें पुनि अधिक अर्जुन ! योगी होउ ॥ ४६ ॥

46. The Yogi ranks, O Pritha's son !,
Above the ascetic or sage,
Greater than man of action, too,
Be thou a Yogi, Arjun, then.

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

श्रद्धायुत यतचित सदा भजै जु योगी मोइ ।
सब योगिन में श्रेष्ठतम सोइ बताओं तोइ ॥ ४७ ॥

47. And 'mongst them all, whoso is full
Of faith and love intense for Me,
And with the inner Self abides,
The most attun'd I reckon him.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अध्यात्मयोगोनाम षष्ठोध्यायः ॥६॥

——::❀::——

इति अध्यात्मयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ओ३म् ततसत्

——::❀::——

Here Endeth The Sixth Discourse
Entitled
THE PRACTICE OF MEDITATION.

——::❀::——

अध्याय ७

श्रीभगवानुवाच—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा—

मोमें हुइ आसक्तमन मोरहि आश्रय पाइ।
जा विधि योगी योगयुत मोइ जानै सुनु, ताइ ॥ १ ॥

1. With mind attach'd to Me, O Partha!
In Yog engaged, in Me enshrin'd,
Learn how, by thee, with certainty,
I might be known in full extent.

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

ज्ञान और विज्ञान मैं कहौं सकल यहि ठौर।
जाहि जानि फिर नहिं रहै जानन कों कछु और ॥ २ ॥

2. To thee this knowledge I'll impart,
And Wisdom in its prime essence,
With these equipp'd, nothing remains,
To be acquired here by man.

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥३॥

सिद्धिहेत नर सहस में यतन करै कोउ एक।
सिद्धन में हूँ एक कोउ जानत मोइ सविवेक ॥ ३ ॥

3. Among a thousand men, perchance,
Hardly one tries for perfect state,
Among the perfect, hardly one,
Knoweth Me in My prime essence.

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

महि जल पावक पवन नभ अहंकार बुधि चेत।
येहि प्रकार मेरी प्रकृति आठ गुणन में लेत ॥ ४ ॥

4. Earth, water, fire and air, O Prince !,
Ether and mind and Reason, too,
And egoism which is the eighth,
These are My nature's components.

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

यह अपरा है अन्य जो परा प्रकृति कहलात।
जीवरूप सो महाभुज ! जो जग धारत तात ! ॥ ५ ॥

5. This is the lower, Mighty-arm'd !,
Now know My higher Nature, too,
The real element of life
Which all this Universe sustains.

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥

इन दोउन तें भूत सब प्रकटत हैं अस जानु ।
अरु मोकों सब जगत कौ कर्त्ता हर्त्ता मानु ॥ ६ ॥

6. Know this to be the womb of all
From which all beings here arise,
I am the source of all the worlds,
And place of dissolution, too,

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

मो सों परतर अन्य कछु अहै धनंजय ! नाहिं ।
मणिगण जैसे सूत बिच पोह्यौ जग मो माहिं ॥ ॥

अथवा

मो सों परतर कछु नहीं सुनु कुन्ती के पूत ।
गुँथ्यो मोहि में जगत सब जिमि मणिगण बिचसूत ॥ ७ ॥

7. Nothing existeth in this world
Higher than I, O Dhananjay !
This Universe is strung on Me,
As rows of pearls upon a thread.

रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

जल में रस शशि सूर्य में प्रभा अहौं सुन पार्थ ।
शब्द प्रणव नभ वेद में पुरुषन में पुरुषार्थ ॥ ८ ॥

8. In water I the Savour am,
Radiance in the sun and moon,
Word of Power in Holy Writ,
In ether, Sound, in man, Potence.

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

पुण्य गंध हौं भूमि में तेज अगिन में जान ।
सब भूतन में जीव हों तपसिन में तप मान ॥ ९ ॥

9. Pure Fragance in the earth am I,
Brilliance in the burning fire,
And Life in all that lives and moves,
And Penance in the Holy Ones.

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

सब प्राणिन कौ पार्थ ! मोइ बीज सनातन मान ।
तेजवंत कौ तेज अरु धीमति की धी जान ॥ १० ॥

10. Know Me th' eternal seed of all
That here existeth, Pritha's son!
Know Me the Wisdom of the wise,
And Glory of the Shining Ones.

बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम् ।
धर्मोविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

बलहु मोइ बलवान कौ काम राग बिनु जान ।
काम जो धर्म विरुद्ध नहिं ताहू कों मोहि मान ॥ ११ ॥

11. I am the Power in the strong,
Devoid of passion and desire :
Yet am I Right Desire in all,
Know this full well, O Bharat's son.

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

सात्त्विक राजस तामसिक हैं जो ये त्रय भाव।
सो मोमें सब बसत हैं तिन्ह में मोइ न पाव ॥ १२ ॥

12. The triple qualities, O Parth!
Harmonious, active, indolent,
Know these as coming forth from Me,
They are in Me, not I in them.

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३

इनहीं भावन में फँस्यौ पारथ! सब संसार।
मो अत्तर कों नहिं लखत जो हों इनतें पार ॥ १३ ॥

13. This Universe of living things,
Deluded by these qualities,
Knoweth Me not, the Lord of all,
Untouch'd by change, O Kunti's son!

दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते ॥१४॥

दुस्तर दैवी गणमयी मम माया लखु याहि।
शरण मोर जो लहत है सोइ तरत है ताहि ॥ १४ ॥

14. This spell divine, illusion great,
That's caused by triple quality,
Is hard indeed to get beyond,
Except by those that come to Me.

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

मूढ़ कुकर्मी अधम नर कबहुं न पावत मोइ ।
माया तें हतज्ञान हुइ असुरभावयुत सोइ ॥ १५ ॥

15. But wicked men, deluded souls,
And vilest people seek Me not,
And they whose wisdom's render'd dim
By sheer illusion, guised as fiends.

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

अर्जुन ! चार प्रकार के सुजन भजत हैं मोइ ।
आर्त्त दरिद्री ज्ञानयुत अरु जिज्ञासू जोइ ॥ १६ ॥

16. Four kinds of righteous men are there
That worship Me, O Arjuna !,
Who suffer pain, who knowledge seek,
Who long for riches, and the wise.

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

तिन्ह में ज्ञानी नित्ययुत एक भक्त बड़ होइ ।
ज्ञानी कों मैं परम प्रिय सोहू प्यारौ मोइ ॥ १७ ॥

17. Of these, the wise man, harmonised,
Who loves the One is best of all,
I am the Darling of the wise,
As he is also dear to Me.

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः सहि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

ये सब पार्थ ! उदार मम आतम ज्ञानी होइ ।
सर्वोत्तम गत मोहि में लहत युक्तचित सोइ ॥ १८ ॥

18. Noble are all these, to be sure,
But wise man is Myself, indeed,
For he regardeth Me alone,
As Highest Path and Final Goal.

बहूनां जन्मनामंते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१६॥

बहुत जनम के अंत में ज्ञानी पावत मोइ ।
वासुदेव ही सर्व अस जानत दुर्लभ सोइ ॥ १९ ॥

19. And at the close of countless births,
The wise one surely comes to Me,
And Vasudev is all, he says ,
Such noble soul is rare, indeed!

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ॥
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

निज स्वभाव तें नियत जो कामी अरु अज्ञान ।
सोहू नियमहि धारिकै भजत देवता आन ॥ २० ॥

20. Who thro' desire have Wisdom lost,
Go forth to other Shining Ones,
Resorting to external rites,
According to their natures own.

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

जो जो जिह जिह भजत है श्रद्धायुत हुइ पार्थ।
तिहि तिहि में श्रद्धा अचल देहों परम यथार्थ ॥ २१ ॥

21. Whatever god a devotee
In worship seeks, in earnest faith,
I verily confirm, O Parth!,
The steady faith of such a man.

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥२२॥

ता श्रद्धा सों युक्त हुइ ता सुर बिच चित देत।
ताही सों सब कामना मेरे द्वारा लेत ॥ २२ ॥

22. Endow'd with faith supreme he seeks
The worship of that Shining One,
And from Him he obtains the boon
Which I do sanction for his sake.

अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥२३॥

इन्ह मतिमंदिन कों फलहु नाशमान ही होइ।
सुरकों सुरपूजक लहैं मोर भक्त लहँ मोइ ॥ २३ ॥

23. Finite indeed the fruit that does
Belong to those of little minds,
To gods go those that worship them,
My devotees come unto Me.

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

सर्वोत्तम परभाव मम नहिं जानत हैं अंध ।
तातें मो अव्यक्त कों व्यक्त गिनै मतिमंद ॥ २४ ॥

24. Deceiv'd by triple quality,
They think of Me as Manifest,
Uncouscious of my Higher Self,
Unchangeable and unsurpass'd

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

सबको नाहिं दिखात हौं रहि माया के बीच ।
अज अरु अत्तय नहिं लखत मोकों जनता नीच ॥ २५ ॥

25. Nor am I manifest to all,
In yogic *maya* envelop'd ;
Deluded people know Me not,
Unborn, Imperishable One.

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

मैं जानत हौं जो भयौ जो है जो फिर होइ ।
अर्जुन ! मैं जानों सबहि मोहि न जाने कोइ ॥ २६ ॥

26. I know the beings that have been,
I also know that now exist,
As well as those that are to come,
But no one knows Me, Arjuna!

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥२७॥

द्वंद्वमोह उत्पन्न जो रागद्वेष तें होइ।
भारत! सृष्टिविधान में प्राणिन मोहत सोइ॥ २७ ॥

27. Misled by pairs of opposites,
Attraction-and-repulsion-born,
All beings walk this Universe,
In sheer delusion, Bharat's son!

येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥२८॥

पापमुक्त जो नर अहैं जिनके पुण्य महान।
द्वंद्वमोह तें छूटिकै भजत मोहि पहिचान॥ २८ ॥

28. But men of pure and noble deeds,
In whom all sin is come to end,
Freed from the pairs of opposites,
Cleave unto Me with firm intent.

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥२६॥

जरा मरण मोक्षार्थ जो मम आश्रित हुइ जाइ।
ताहि कर्म सब ब्रह्म ही अध्यातम दरसाइ॥ २९ ॥

29. They, who, refuged in Me, for e'er
Lib'ration seek from birth and death
They know th' Eternal One, forsooth,
Self-knowledge and all action, too.

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

साधिभूत अधिदैव अरु साधियज्ञ जो मोइ।
लखै युक्तचित अंत में मोकौं जानै सोइ ॥ ३० ॥

30. And those who know Me as the source
Of elements and sacrifice,
Being completely harmonised,
Keep Me in mind when going forth.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासू० ब्र० यो० श्रीकृष्णार्जुन संवादे ज्ञानयोगोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

——::*::——

इति विज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ओ३म् तत् सत्

——::*::——

Here Endeth The Seventh Discourse
Entitled
DISCRIMINATIVE KNOWLEDGE.

——::*::——

अध्याय ८

अर्जुन उवाच—

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥

अर्जुन ने कहा ।

कौन ब्रह्म अध्यात्म को कर्म कहत हैं काइ ?
पुरुषोत्तम ! अधिभूत अरु अधिदैव हू बताइ ॥ १ ॥

Arjuna said :—

1. What is that Brahman, Best of men!
Self-knowledge what, what Action is,
What knowledge of the elements,
And Knowledge of the Shining Ones?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

को अधियज्ञ शरीर में मधुसूदन भगवंत !
अन्त काल ताको कहो क्यहि विधि पावै संत ? ॥ २ ॥

2. What is the Sacrifice, and how
To do it in this body, say,
And how at times of going forth,
Art Thou by Saints and Sages known?

श्रीभगवानुवाच-

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

श्रीभगवान ने कहा—

परब्रह्म अक्षर कह्यो अरु अध्यातम स्वभाव ।
जन्म लहत प्राणी सबहि तातें कर्म कहाव ॥ ३ ॥

The Blessed Lord said :—

3. The Deathless One is Brahman call'd,
Self-knowledge is His nature own,
While that which causes birth of things
Is Action named, O Bharat's son !

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥४॥

नाशमान अधिभूत हैं पुरुष कह्यो अधिदैव ।
मोहि जान अधियज्ञ तू तन बिच पार्थ! सदैव ॥ ४ ॥

4. All form is subject to decay,
Energy's centre Brahman is,
Myself am I the sacrifice,
Thus know thou this, O best of man !

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

अन्त काल मोकों सुमिरि जो कोउ त्यागत देह ।
मेरौ पद ताकों मिलै कछुक नाहिं संदेह ॥ ५ ॥

5. And he who casting off the frame,
Thinking upon Me goeth forth,
He enters into Mine essence,
There is no doubt at all of this.

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

जो जो जा जा भाव कों सुमिरत छांड़त देह।
सो सो पारथ! मिलत है भाव शीघ्र ही तेह ॥ ६ ॥

6. Whoever at the end of life,
Thinking on any being, dies,
To that alone he goeth forth,
Conform'd to it, O Kunti's son!

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७॥

तातें मोकों हर घड़ी सुमिरहु मन बुधि लाइ।
मोकों निश्चय पाइहो करौ युद्ध तुम जाइ ॥ ७ ॥

7. Therefore at all times think of Me,
And fearlessly engage in fight,
With Mind and Reason on Me set,
And thou shalt come to Me, O Parth!

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥८॥

योगी भल अभ्यास करि जब नहिं कितहुँ डुलाइ।
ऐसे मनतें जो भजै परमपुरुष सोइ पाइ ॥ ८ ॥

8. With mind not wand'ring after aught,
By constant practice harmonised,
And plunged in meditation deep,
One goeth to the Goal Supreme.

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिंत्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥६॥

जो प्रेरक पालक सकल सूक्ष्मरूप तमपार ।
पुरुष पुरातन कवि विमल जो रविवर्ण अपार ॥ ९ ॥

9. The man who keeps in mind that One,
Ancient, Eternal, Overlord,
Minuter than the minutest,
Bright as the sun trauscending gloom ;

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन
भक्त्या युतो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परंपुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

अन्तकाल मन अचल करि जो सुमिरत है ताइ ।
भक्तियोग सौभाग्यतें ब्रह्मरूप हुइ जाइ ॥१०॥

10. He, at the time of going forth,
With mind unshaken and devout,
By *yogic* power holding breath,
Most surely reaches Soul Supreme.

यदक्षरं वेदविदो वदंति
विशंति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

जाकों अक्षर कहत हैं श्रुति के जाननहार ।
जामें करत प्रवेश हू यती राग करि पार ॥
जाकी इच्छा करत हैं ब्रह्मचर्य व्रत धारि ।
ताही पद कौ करत हों विवरण पार्थ ! सँभारि ॥११॥

11. Which Veda-knowers deathless call
And sages enter passion-free;
On which is Brahmacharya based,
That Path to thee I'll declare,

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरूद्ध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनःप्राणमास्थितोयोगधारणाम् ॥१२॥

सब द्वारन कों रोकिकै मनहुँ हृदय बिच लाइ ।
माथ चढ़ावै प्राण निज थित हुइ योग कराइ ॥१२॥

12. The gates of sense all firmly closed,
And mind confin'd within the heart,
With life-breath held within the head,
In Yogic concentration pois'd,

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यःप्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

ओमेकाक्षर ब्रह्मकों जपत निरन्तर जोइ ।
मोकों सुमिरत चलबसै लहै परमपद सोइ ॥१३॥

13. Reciting one-syllabled Aum,
With thoughts upon Me centre'd all,
Who goeth forth aband'ning frame,
He sure attains to highest path.

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

जो अनन्यचित योगयुत ज्ञानी ध्यान लगाइ ।
निस दिन मोकों भजत है सुलभ होत हों ताइ ॥१४॥

14. Whoever thinks on Me alone,
And not on others, Pritha's son,
He reaches Me without effort,
That ever harmonised one.

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

मोइ पाइ फिर जन्म हू नश्वर अरु दुख ठाम ।
नहिं पावत, पुनि पाइ करि सिद्धि परम अभिराम ॥१५॥

15. Having once come to Me, forsooth,
These Great Ones are not born again,
They visit not this pain's abode,
But reach the state of perfect calm.

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

ब्रह्मलोक हू पाइ कै लौटत है यह जान ।
मोइ पाइ पारथ ! जनम फिर नहिं पावत आन ॥१६॥

16. All spheres including Brahma's world,
Are subject to the Cyclic Law,
But he who once cometh to Me,
Sure breaks the round of birth and death.

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदोजनाः ॥१७॥

युग सहस्र को ब्रह्मदिन युग सहस्र की रात ।
जो जानत ये रात दिन जाननहार कहात ॥१७॥

17 People who know that Brahma's Day
Extends o'er thousand Ages long,
That Brahma's Night is same in length,
They know the Day and Night indeed.

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥

दिन में सब अव्यक्त तैं जीव प्रकट हुइ जाँइ ।
रात भये पुनि भूत सब ताही बीच समाँइ ॥१८॥

18. At dawning of the Cosmic Day,
All Chaos into Cosmos turns,
But when the Night cometh again,
The Choas comes along with it.

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

भूतग्राम सब होत है सदा रात बिच लीन ।
दिन के निकसे विवश सब जन्महि पार्थ ! नवीन ॥१९॥

19. Thus multitudes of beings, Parth,
Go forth repeatedly for e'er;
Dissolving at approach of Night,
Assuming shape at Dawn, again.

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

तासों परतर जो अहै अलख सनातन सोइ ।
सब भूतन के नसत हू नसै न कबहूँ जोइ ॥२०॥

20. But 'neath this ever-changing phase,
Abides the One, Eternal call'd,
Which, when the other forms decay,
Remains unchanged for evermore.

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

अक्षर अलख अगाध सो कहत परम गति ताहि ।
धाम परम सोइ जान मम जा लहि लौटत नाहि ॥२१॥

21. This is th' Eternal Deathless One,
This also is the Highest Goal,
Attaining which they don't return,
That is Supreme Abode of Mine.

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

जो व्यापक सब विश्व में जो भूतन कौ थान ।
परम पुरुष जो सो मिलै परमभक्त कों आन ॥२२॥

22. And He, the Highest Being, Parth,
May, by devotion, be obtain'd,
In Whom all beings sure abide,
By Whom all this is pervaded.

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

जब जब योगी त्यागि तनु लौटत है वा नाइ ।
ता अवसर कों कहत हों सुनहु पार्थ चित लाइ ॥२३॥

23. The times, when Yogis going forth,
Return to earth and don't return,
Those times shall I declare to thee,
O noble prince of Bharat's line !

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

अगिन जोत दिन शुक्लपख अरु उत्तर छै मास ।
इनमें योगी प्राण तजि जाइ ब्रह्म के पास ॥२४॥

24. Fire, light, day-time, the bright fort-night,
The six months of the Northern Path,
Then going forth, O Pritha's son !,
Th' Eternal surely they obtain.

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते ॥२५॥

धूम रात अरु कृष्णपख दक्षिण के छै मास ।
चन्द्रलोक कों पाइ कै लौटत फेर निरास ॥२५॥

25. The smoke, night-time, the dark fort-night,
The six months of the Southern Path,
Then Yogi, going forth, attains,
The moon-lit sphere and thence returns.

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽवर्तते पुनः ॥२६॥

शुक्ल कृष्ण ये मार्ग दोइ इनहिं सनातन जान ।
एक पाइ लौटन परत दूसर नहिं अस मान ॥२६॥

26. This Path of Darkness and of Light,
Is sure this world's eternal track,
Who go by bright do not return,
Who go by dark come back again.

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

इन मार्गन कों जानिकै योगी मोहत नाहिं ।
तातें पारथ ! तुम धरौ चित्त योग के माहिं ॥२७॥

27. Knowing these paths, O Pritha's son,
The Yogi feels nowise perplex'd,
Therefore at all times be thou firm
In paths of Yoga, Kunti's son.

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

वेदन में जो फल कह्यो यज्ञ दान तपयुक्त ।
ताहि लांघि पर पद लहत योगी जीवनमुक्त ॥२८॥

28. Whate'er reward the Ved ascribes
To Sacrifice, Penance and Gift,
Passing all these, by knowledge true,
The Yogi gains the Goal Supreme.

इति श्रीमद्भगवद्गीता० योगशास्त्रेऽक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

——::❀::——

इति अक्षरब्रह्मयोगोनाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ओ३म् तत् सत्

——::❀::——

Here Endeth The Eighth Discourse
Entitled
COMMUNION WITH THE ETETNAL.

——::❀::——

अध्याय ९

श्रीभगवानुवाच—

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा ।

तोइ असूयारहित सों ज्ञान और विज्ञान ।
कहौं गोप्य अति जानि जेहि तरिहौ दुःखमहान ॥ १ ॥

The Blessed Lord said:—

1. This utmost secret I'll declare
To thee who art from carping free,
Wisdom and Knowledge both combin'd,
Which, knowing, thou shalt freedom win.

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

गोपनीय अति विमल अरु उत्तम विद्या जोइ ।
धर्मयुक्त अव्यय सुगम श्रेष्ठ प्रकटफल सोइ ॥ २ ॥

2. A royal lore and Mystery,
For ever pure and excellent,
Founded on practice and on law,
Easy to work, unperishing.

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

याहि धर्ममें जो पुरुष श्रद्धा राखत नाहिं ।
सो मोकों नहिं पाइकै परत मृत्यु मुख माहिं ॥ ३ ॥

3. Those that are faithless, Parantap,
And do not trust this Law Supreme,
Not reaching Me, they sure return
To paths of this abode of doom.

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥

अलखमूर्त्ति मोसों अहै व्याप्त सकल संसार ।
सब प्राणी मोमें बसैं मैं नहिं प्राणि मझार ॥ ४ ॥

4. By Me, pervaded is this all
In My unmanifested form,
All beings have their roots in Me,
Not rooted so am I in them.

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥

मोमें भूतहु नहिं टिकैं देख योगबल एहि ।
जातें मैं रहि पृथक ही पालों पोषों तेहि ॥ ५ ॥

5. Nor are they rooted fast in Me,
Behold my Sovereign Yoga thou,
Though Cause and Stay of all that is,
Yet I Myself dwell not in them.

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

पवन पार्थ! सर्वत्र ज्यों नभ बिच करत पयान।
त्यों मम आश्रित भूत सब निश्चित यह मत मान ॥ ६ ॥

6. As, in the ether rooted firm,
The mighty air doth freely move,
So beings have their roots in Me,
Keep thou this secret well in mind.

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

भूतग्राम मम प्रकृति कों कल्पअन्त में जाइ।
सृजौं सबहि कुन्तीतनय कल्पआदि फिर ताइ ॥ ७ ॥

7. All living things, O Kunti's son,
Enter My *Nature* at the end
Of a World Age; when it begins,
I send them forth from Me, again.

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

आश्रय लै निज प्रकृति को सिरजों बारम्बार।
इन सब प्राणिन कों अवश प्रकृति रूप अनुसार ॥ ८ ॥

8. Wielding My own Creative Pow'r
I emanate from time to time
This multitude of living things,
Helpless by Nature goaded on.

न च मां तानि कर्माणि निबध्नंति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

सृष्टि कर्म के करन तें मोकों बन्धन नाहिं ।
उदासीन जिमि थिरि रहौं नाहिं फँसत तिन माहिं ॥ ९ ॥

9. Nor do these actions ever bind
Myself, O Conqueror of Wealth !,
For, like a Witness unconcern'd,
Aloof I stand, nowise involved.

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

मोतें प्रेरित प्रकृति यहि रचै चराचर भूत ।
ता कारन जग होत है सुन कुन्ती के पूत ॥१०॥

10. My Nature, while I supervise,
Sends forth all things that move about,
As well as those that do not move,
Thus, Kunti's son, this world revolves.

अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

करै अवज्ञा मूढ़ जो लखि मम नरतन भाव ।
सब भूतन कौ ईश पर जानत नाहिं प्रभाव ॥११॥

11. The foolish disregard Me here,
Seeing Me shrined in human form,
Ignorant of My Nature true,
The Lord Supreme of living things.

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहनीं श्रिताः ॥१२॥

विफल कर्म आशा विफल ज्ञान विफल अरु चित्त ।
प्रकृति राक्षसी आसुरी सोइ मोहत है नित्त ॥१२॥

12. Empty of hope, empty of deeds,
Empty of Wisdom, senseless, too,
Fiendish in nature, demon-like,
Deceitful, of ignoble mind.

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

भजत महात्मा मोहि नित मोमें ही चितलाय ।
सब भूतन को आदि लखि दैव प्रकृति कों पाय ॥१३॥

13. But high-souled Sages, Pritha's son !,
Partaking of My Godliness,
Know Me the changeless source of all,
And worship Me with minds intent.

सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ।
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

यश मेरौ गावत सदा यत्न करत व्रतधीर ।
युक्त भक्ति तें नमत पुनि मोहि उपासत बीर ! ॥१४॥

14. Singing My praises evermore,
Determinate and firm in vow,
They worship Me with loving hearts,
Humble and ever harmonised.

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

ज्ञानयज्ञ तें दूसरे यजत उपासत मोइ ।
एक पृथक् बहुधा समुझि सब में व्यापक कोइ ॥१५॥

15. While others worship Me as One,
And Manifold, pervading all,
By off'ring Wisdom-sacrifice,
And thus attain to Me, O Parth.

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

मैं क्रतु हों मैं यज्ञ हों मोहि स्वधा तू जान ।
मंत्र औषधी घृत अगिन हुत मोही कों मान ॥१६॥

16. I am Oblation, Sacrifice,
Ancestral Offering as well,
So also Healing Herb, O Parth !,
Mantram, Butter and Sacred Fire.

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥१७॥

मातपिता सबजगतको और पितामह मान ।
धाता प्रभु ऋक साम यजु ओंकार पहिचान ॥१७॥

17. The Father of this Universe,
And Mother, Prop and Sires' Sire,
Worthy of being known, the "Aum",
The Rik, the Saman and Yajus.

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥

गति भर्त्ता साक्षी प्रभू शरण मित्र अरु धाम।
प्रभव प्रलय अरु बीज हौं अरु लक्ष्मी कौ ठाम ॥१८॥

18. The Path, Sustainer and the Lord,
Witness, Abode and Shelter, too,
Lover am I , and Origin,
Deposit, Seed, and Treasure-house.

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

मैं बरसावत मेह कों रोकत छाँड़त तात।
अमृत मृत्यु सत असत हों सुनु पारथ ! यह बात ॥१९॥

19. The heat I give, and rain send forth,
I hold them back whene'er I like,
Immortal Life and also Death,
Being, Non-being, am I, too,

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयंते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोक-
मश्नंति दिव्यान्दिवि देव भोगान् ॥२०॥

यज्ञ करत पापन दहत चाहत सुरपुर वास।
पुण्य लहत सुरपुर बसत भोगत भोग बिलास ॥२०॥

20. The knowers of the Vedas three,
The drinkers of the Soma, sin-purged,
Adoring Me, they long for heav'n,
And wish to taste the feast divine.

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभंते ॥२१॥

स्वर्गलोक सुख भोगिकै पुण्य क्षीण जब होत ।
काम्यकर्म अनुसार तब लौटत दूसर पोत ॥२१॥

21. Having enjoy'd this heaven-world,
Their merit spent, they fall again,
And sway'd by triple quality,
They come and go as other things.

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

जो अनन्यमन भजत है मोकों चित्त लगाइ ।
योगक्षेमता युक्त कों पहुँचावहुँ हिय लाइ ॥२२॥

22. But those that worship Me, O Parth !,
Thinking alone on Me, none else,
To these souls ever harmonised,
I bring security and gain.

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

अन्य देव हू पूजते जे चित श्रद्धा लाइ ।
पारथ ! सोहू मोहि कों पूजत विधि बिलगाइ ॥२३॥

23. E'en those that worship other gods,
With hearts devout and full of faith,
They also worship Me, Kaunteya,
Though contrary to Ancient Law.

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानंति तत्त्वेनातश्च्यवंति ते ॥२४॥

भोगो मैं सब यज्ञ कौ प्रभु अरु जगकरतार।
मोहि न जानत तत्त्व तें गिरैं सो बारम्बार ॥२४॥

24. I am, indeed, Enjoyer, here,
Of sacrifices and the Lord,
They know Me not as I am, Parth,
And for this reason do they fall.

यांति देवव्रता देवान् पितॄन्यांति पितृव्रताः।
भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोऽपि माम्

सुरपूजक पावत सुरन पितरन तिनके भक्त।
भूत पूजि भूतन लहैं मोकों मम आसक्त ॥२५॥

25. The worshippers of Shining Ones,
Of Ancestors and Elements,
Go forth to them respectively,
But My devotees come to Me.

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

पत्र पुष्प फल जल जु कोउ भक्तिभाव तें देइ।
शुद्धबुद्धि की वस्तु तिह खइहों हर्षित लेइ ॥२६॥

26. Whoso offers with loving heart,
Leaf, water, flow'r or fruit to Me,
That I accept, as gift of love,
Offer'd devoutly as it comes.

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

करहु खाउ होमहु जपहु दान करहु कछु जोइ।
कुन्तीसुत ! जो तप करहु करहु समर्पण मोइ ॥२७॥

27. Whate'er thou dost or eatest thou,
Whate'er thou partest or givest,
Whate'er thou dost of penance here,
Offer to Me, O Kunti's son;

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

या विधि सब शुभ अशुभ फल कर्मबन्ध छुट जाइ।
आत्मयोगसंन्यासयुत मोकों मिलिहै आइ ॥२८॥

28. Thus shalt thou from the bonds be freed
Of action, good or bad, forsooth,
And fully harmonised by Yog,
Lib'rated, thou shalt come to Me.

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

मैं सम सब भूतन विषें प्रिय अप्रिय नहिं कोइ।
जो मोकों चित दै भजै मैं तिहि मोमें सोइ ॥२९॥

29. The same am I to beings all,
None hateful is to Me nor dear;
Who worship Me with heart devout,
They are in Me, and I in them.

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

भजत जु दुष्टाचार हू मो में चित्त लगाइ ।
सम्यक् व्यवसायी सुजन पारथ ! मानहु वाइ ॥३०॥

30. E'en if the sinful worship Me,
With undivided heart and mind,
These, too, must be accounted pure,
For they have properly resolved.

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ।
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

धर्मनिष्ठ हुइ शीघ्र ही नित्य शान्ति लह सोइ ।
पार्थ ! जानु मम भक्त को नाश कबहुँ नहिं होइ ॥३१॥

31. Ere long they dutiful become,
And surely gain eternal peace,
Know thou, for certain, Kunti's son,
My *bhakta* never comes to grief.

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम् ॥३२॥

मेरौ आश्रय पाइकै पापी हू जो होइ ।
वैश्य शूद्र वनिता तथा लहहिं परमपद सोइ ॥३२॥

32. Persons that take refuge in Me,
Though born of sinful womb, O Parth,
Women and Vaishyas, Shudras, too,
They also gain the Goal Supreme,

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

क्यों नहिं विप्र पवित्र पुनि राजर्षी मम भक्त ।
अनित क्लेशमय लोक लहि भज मोहिं होइ विरक्त ॥३३॥

33. Much more, then, holy Brahmanas,
And Royal Saints with hearts devout,
Hence in this cheerless, fleeting world,
Do thou, O Arjun !, worship Me

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

मोमें चित्त लगाइकै पूजहु निसदिन मोइ ।
मो कहँ सब अर्पण करहु मिलै मोर पद तोइ ॥३४॥

34. Fix thou thy mind on Me alone,
Be thou devoted unto Me,
And sacrifice and homage pay,
Thus shalt thou My Abode attain.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राज-विद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

——::*::——

इति राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥
ओ३म् तत् सत्

Here Endeth The Ninth Discourse
Entitled
ROYAL SCIENCE AND ROYAL MYSTERY.

——::*::——

अध्याय १०

श्रीभगवानुवाच—

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

श्रीभगवान ने कहा—

महाबाहु ! फिरहू सुनहु परम वाक्य मम जोइ ।
प्रेमयुक्त तोतें कहौं अति हितकारक सोइ ॥ १ ॥

The Blessed Lord:—

1. Again, O mighty-armèd Chief,
Listen thou to my Word supreme
Which I, wishing to do thee good,
Declare to thee, My darling one.

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥२॥

सुरगण और महर्षि कोउ मम सामर्थ्य न जान ।
सुरमहर्षिगण सबनसों प्रथम मोहि तू मान ॥ २ ॥

2. The multitude of Shining Ones
And Rishis great know not My source,
I am the outset of them all,
Of all the Gods and Saints divine.

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

जानै मोइ अनादि अज लोक महेश्वर जोइ ।
सब पापन तैं मुक्त है दिव्य ज्ञान लह सोइ ॥ ३ ॥

3. Who knoweth Me, unborn, O Parth !,
And Lord Supreme of all this world,
He, freed from all delusion here,
Is cleans'd of every taint of sin.

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥४॥

बुद्धि सत्य शम दम क्षमा अव्याकुलता ज्ञान ।
तुष्टि दुःख सुख भय अभय भव अभाव तप दान ॥ ४ ॥

4. Reason, wisdom, non-illusion,
Forbearance, truth and self-restraint,
Calmness, pleasure, pain, existence,
Non-existence, fear, courage;

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

अयश अहिंसा यश तथा समता अरु समभाव ।
मोई सों सब होत हैं पृथक पृथक कहलाव ॥ ५ ॥

5. Harmlessness, composure, content,
Penance and charity and fame,
And also obloquy, O Parth,
These qualities issue from Me.

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

सात महर्षी पूर्व जो भये तथा मनु चार।
सो मम मानसजात हैं तिनहीं तैं संसार ॥ ६ ॥

6. The mighty Rishis numb'ring seven,
The Ancients four, and Manus, too,
All these were of My Nature born,
By them this race was multiplied.

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥७॥

मेरी योगविभूति कौं जानत है जो पार्थ!
अचल योगयुत सो अहै मानहु वचन यथार्थ ॥ ७ ॥

7. He who knows that Sovereignty
And Yog of Mine in true essence,
He is by Yoga harmonised,
There is no doubt at all of this.

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥

मैं सब को कर्त्ता अहौं मेरे तैं सब होइ।
ऐसें निश्चलभावयुत संत भजत हैं मोइ ॥ ८ ॥

8. I am the source of all that lives,
And all evolves from Me alone,
Having thus known, Enlighten'd Ones,
Adore Me in emotion wrapt.

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ।
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमंति च ॥९॥

मोमें चित्त लगाइकै मोई में गत प्रान ।
आपस में मोकों कहहिं लहि रति तोष महान ॥ ९ ॥

9. With minds on Me for ever fix'd,
With lives devoted to Myself,
Illumining each other, too,
Content and joyful they remain.

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते ॥१०॥

या विधि जो मोकों भजै सदा प्रीति चित लाइ ।
बुद्धियोग तेहि देत हूँ जाते मोइ मिलि जाइ ॥१०॥

10. To these of harmonised souls,
Adoring Me with loving hearts,
I give the power of Yog Supreme
By which they come to Me, O Parth !

तेषांमेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

दयाहेतु तिन पै महा करिकै ज्ञानप्रकाश ।
आत्मभाव थिर करत हौं अज्ञानज तम नाश ॥११॥

11. Out of compassion for them, too,
Dwelling within their inner Self,
I gloom of ignorance dispel
By Lamp of Wisdom burning bright.

अर्जुन उवाच—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥

अर्जुन ने कहा—

परब्रह्म परधाम अरु परम पवित्र महान ।
पुरुष सनातन दिव्य अरु आदिदेव भगवान ॥१२॥

Arjuna said:—

12. Brahman Supreme, Abode Supreme,
Transcendent, Pure, art Thou, O Lord,
Eternal, Man Divine, Sublime,
Primeval God of gods, Unborn.

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

ऐसे तुम हो कहत सब ऋषि नारद मतिमान ।
असित व्यास देवल तथा आपहु करत बखान ॥१३॥

13. All Saints acclaim Thee in this way,
As also Narad the Divine;
Asit and Devala and Vyas,
And now Thou dost declare Thyself.

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
नहि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

केशव ! जो तुम कहत हो सत्य वचन है सोइ ।
प्रभुजी तव संभव नहीं लखैं सुरासुर कोइ ॥१४॥

14. All this I do believe as true,
That Thou, O Keshav, tellest me,
Thy emanations, Blessed Lord,
Nor god nor demons comprehend.

स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

आप आप कौं आप ही जानत हौ भूतेश !
पुरुषोत्तम ! विश्वेश ! प्रभु ! जगकर्त्ता ! देवेश ! ॥१५॥

15. Yet Thou dost know Thyself, indeed,
As Source of beings, Lord of All,
The Shining One of Shining Ones,
The Sovereign Ruler of the world.

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि॥१६॥

आपन दिव्यविभूति की कहौ कृपा करि गाथ ।
जिनतैं इन लोकन बसौ व्याप्त होइ यदुनाथ ! ॥१६॥

16. Now deign to tell, without reserve,
Thy Glories, transcendent, divine,
By which Thou dost remain, O Lord !,
Pervading all this Universe.

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिंतयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिंत्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

केहि प्रकार चिंतन करत जानूं योगी तोइ ।
किन किन भावन में करूँ तव चिन्तन कहु मोइ ॥१७॥

17. How may I know Thee, Yoga's Lord,
By constant meditation, say,
What are Thy aspects, Lord, in which
I am to meditate on Thee.

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥

निज विभूति अरु योग पुनि कहौ सहित विस्तार।
अमृतोपम सुनि वचन तव होत न तृप्ति हमार ॥१८॥

18. Describe to me in full detail
Thy Yog and Glory, Janardan,
For never can satiety come
While hearing Thy nectareous words.

श्रीभगवानुवाच—

हंत ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्य मे ॥१९॥

श्रीभगवान ने कहा—

हे अर्जुन ! मैं कहत हौं दिव्य विभूति प्रधान।
नहिं जिनको कोउ अन्त है, ममविस्तार महान ॥१९॥

The Blessed Lord said:—

19. Blessed be thou, I will declare
My glorious attributes to thee,
O best of men, no limit lies
To all the Glories I possess.

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥२०॥

मैं आत्मा सब भूतचित रहों पार्थ यहि जान।
आदि अन्त अरु मध्य हों भूतन को अस मान ॥२०॥

20. I am, O Gudakesh, the Self
Located in the hearts of all,
I am the Origin of things,
The Middle and the End as well.

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

आदित्यन में विष्णु मैं ज्योतिन में पुनि भानु ।
मरुतन मध्य मरीचि हों नखतन में शशि जानु ॥२१॥

21. Of Adityas, Vishnu am I,
Of Radiances, glorious Sun,
Marichi of the Maruts, too,
The Moon am I of Asterisms.

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

वेदन बिच हों साम पुनि इन्द्र सुरन में मान ।
इन्द्रिन में मन चेतना भूतन की मोइ जान ॥२२॥

22. Of Vedas, Sam Ved, am I,
And Vasav of the Shining Ones,
Of Senses all, I am the Mind,
Of living things, Intelligence.

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

रुद्रन में शङ्कर अहौं यक्षन माहिं कुबेर ।
अष्टवसुन में अग्नि पुनि पर्वत बीच सुमेर ॥२३॥

23. Shanker am I of Rudras all,
Vittesh of Yakshas, Rakshasas,
Pavak am I of Vasus, too,
And Meru of the Mountain tops.

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

पुरोहितन में मुख्य मोइ पार्थ ! बृहस्पति जान ।
कार्त्तिकेय सेनपन में सर बिच सागर मान ॥२४॥

24. Know Me, O Parth, of household priests,
The Chief, Brihaspati, by name,
Skanda am I of Marshals brave,
Of Lakes am I the Ocean wide.

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

महा ऋषिन बिच भृगु अहौं प्रणव गिरा बिच मान ।
यज्ञन में जपयज्ञ में हिमगिरि गिरि बिच जान ॥२५॥

25 Bhrigu am I of Rishis, Parth !,
Of words I am the syllable "Aum,"
Of sacrifices, Silent Prayer,
Of stable things, Himalaya.

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥

नारद देव ऋषीन बिच पीपल वृक्षन माँहि ।
गंधर्वन में चित्ररथ कपिल मुनिन में आंहि ॥२६॥

26. Ashvattha of the trees am I,
Of heavenly Rishis, Narada,
Of elves, the Elfin King am I,
And Kapil of perfected ones.

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेंद्राणां नाराणां च नराधिपम् ॥२७॥

अश्वन में उच्चैश्रवा अमृतोद्भव मोहिं जान ।
दन्तिन बिच ऐरावतहु नरपति नर बिच मान ॥ २७ ॥

27. Of horses know Me nectar-born,
And known to fame, Uchchaishravas,
Of elephants Airavata,
And King among the sons of men.

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

अस्त्र शस्त्र बिच बज्र हौं सर्पन वासुकि नाम ।
धेनुन में सुरधेनु मैं प्रजनन बिच हौं काम ॥ २८ ॥

28. Of weapons know Me Thunderbolt,
Of cows, the Kamdhuk divine,
Kandarpa who doth procreate,
Of serpents Vasuki I am.

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

नागन बीच अनन्त मैं यादन में जलदेव ।
पितरन में हौं अर्यमा शासक बिच यम लेव ॥ २९ ॥

29. I am Anant of Nagas, too,
Of ocean-dwellers, Varuna,
And Aryaman of ancestors,
Of Governors I am Yama.

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेंद्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

दैत्यन में प्रह्लाद हौं गणतज्ञन विच काल ।
पशुन मध्य में सिंह हौं खग बिच विनतालाल ॥ ३० ॥

30. Know Me Prahlad of demons all,
Of calculators, Time I am,
Of brutes, I am the Forest King,
And Vainteya of winged tribes.

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥३१॥

शुचिकर्तन में पवन हौं शस्त्रधार बिच राम ।
मकर झषन में सुरसरित नदियन में बढ़ धाम ॥ ३१ ॥

31. Of purifiers Wind am I,
And Ram am I of warriors great,
Of fishes I am Makara
Of rivers Ganga's holy stream.

सर्गाणामादिरंतश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

आदि अन्त अरु मध्य मोइ सृष्टिन कौ पहिचान ।
विद्यन में अध्यात्म हौं वाद प्रवादिन मान ॥ ३२ ॥

32. And I am all creation's Source,
The Middle and the Terminal,
Soul-science among sciences,
And Speech of orators sublime.

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहंविश्वतोमुखः ॥३३॥

वर्णन माँहि अकार हौं द्वन्द्व समासन माँहि ।
काल विधाता विश्वमुख हौं जो नाँहि नसाँहि ॥ ३३ ॥

33. Of letters, letter A I am,
The dual Force of all compounds,
I'm also everlasting Time,
I am Supporter, fronting all.

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्चनारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥३४

मृत्यु सर्वहर जान मोइ भाग्य भविष्यन माँहि ।
नारिन में वाणी क्षमा धृति मेधा जो आँहि ॥ ३४ ॥

34. And all-devouring Death am I
And Source of all that is to come,
Fame, Fortune, Speech, Intelligence.
Mem'ry, Constancy, Forbearance.

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छंदसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

गायत्री मैं छन्द बिच बृहत्साम बिच साम ।
मासन में अगहन अहौं ऋतुन बसंतहि नाम ॥ ३५ ॥

35. Of hymns I am the Saman great,
And Gayatri of metres all,
Of months I am the Margashirsh,
Of seasons I'm the Flowery one.

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥३६

तेजस्विन में तेज मोइ जुआ छलन में जान ।
जय हौं अरु व्यवसाय हौं गुण बिच सत्त्व महान ॥ ३६ ॥

36. I am the Gambling of the cheat,
And Glory of the shining things;
Success am I, and Firm Resolve,
And Truth am I of truthful ones.

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पांडवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥३७॥

वासुदेव यादवन में अर्जुन पण्डन माँहि ।
मुनिन मध्य मैं व्यास हौं शुक्र कविन के ठाँहि ॥ ३७ ॥

37. Of Vrishnis, Vasudev am I,
Of Pandavas, Dhananjaya,
Of sages also Vyas am I,
Of poets, Ushanas the Bard.

दंडो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

शासक कौ मैं दण्ड हौं नीति विजयि की जान ।
मौनी कौ मैं मौन हौं ज्ञानवान को ज्ञान ॥ ३८ ॥

38. The Sceptre of the Rulers, too,
The Art of those that seek success,
Of secrets I am Reticence,
And Knowledge of the Knowers all.

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३९॥

सब भूतन कौ बीज जो मैं ही पारथ ! सोइ ।
मेरे बिनु जंगम कबहु थावरहू नहिं होइ ॥ ३९ ॥

39. And whatsoe'er is Seed of things,
That know Me thou, O Arjuna,
Nor is there aught, moving, inert,
That might exist, bereft of Me.

नांतोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०॥

मेरी दिव्य विभूति कौ अन्त कबहु नहिं होइ ।
सूक्ष्म रूप तैं मैं कह्यो तुमहि परन्तप ! सोइ ॥ ४० ॥

40. There is no end, Torment of foes !,
To My Celestial Attributes,
What I have thus declared to thee,
A fragment is of Glory Mine.

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥४१॥

जो जो वस्तु विभूतियुत श्रीयुत ऊर्जित होइ ।
अर्जुन मेरे अंश तैं निश्चय उपजत सोइ ॥ ४१ ॥

41. Whate'er is glorious, bright and good,
Mighty, sublime and beautiful,
Know thou that goeth forth from Me,
And is a portion of Myself.

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

अथवा बहु विस्तार तें पार्थ! प्रयोजन काह।
एक अंश सों धारि जग थित हों सुनु नरनाह! ॥ ४२ ॥

42. But what hast thou to do with this,
And these details, O Arjuna?
Supporting all this Universe,
By single fragment, I remain.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूति-योगोनाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

—:❀:—

इति विभूतिविस्तारयोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
ओ३म् तत् सत्

—:❀:—

Here Endeth The Tenth Discourse
Entitled
DIVINE GLORIES.

—:❀:—

अध्याय ११

अर्जुन उवाच—

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

अर्जुन ने कहा।

दया धारि अति गुह्य जो अध्यातम भगवान।
वचन कह्यो तातें प्रभो यह मम मोह विहान ॥ १ ॥

Arjuna said:—

1. "Out of compassion for me, Lord,
Thou hast reveal'd this mystery,
This secret great concerning Self,
By which delusion is dispell'd.

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

कमलनयन! तुमतें सुन्यो भूतन कौ भवनाश।
अरु अव्यय महात्म्य कौ तुमने कियौ प्रकाश ॥ २ ॥

2. "The rise and fall of living things
Which thou hast in detail describ'd,
Have all been heard by me from Thee,
Thy Glory, too, O Lotus-eyed!

एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३॥

सब यथार्थ जो तुम कह्यौ आत्म विषै भगवान ।
देखन चाहों हों प्रभो तेरौ रूप महान ॥ ३ ॥

3. "O Lord Supreme, as Thou hast said,
E'en as Thou dost describe Thyself,
O Best of Beings, let me see
That Form Omnipotent of Thine.

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

मेरे देखन जोग जो मानत प्रभु ! तुम सोइ ।
तौ तुम अव्यय रूप कौ दरस दिखाओ मोइ ॥ ४ ॥

4. "And if Thou thinkest that by me
It can be seen, O Lord of Yog,
Then show me Thine immortal Form,
Thy glorious and eternal Self".

श्रीभगवानुवाच—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

श्रीभगवान ने कहा ।

मेरे देखो सैकड़न पार्थ ! हजारन रूप ।
नाना विधि अति दिव्य अरु नाना वरण अनूप ॥ ५ ॥

The Blessed Lord said:—

5. Behold, O Parth, a Form of Mine,
A hundredfold, a thousandfold,
Diverse in kind, sacred, divine,
Diverse in colours and in shapes.

पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

भारत ! लखु आदित्य वसु अरु लखु अश्विनिकुमार ।
रुद्र मरुत जे नहिं लखे लखु आश्चर्य अपार ॥ ६ ॥

6. See Adityas, Vasus, Rudras,
The Ashvins and the Maruts, too,
Behold the marvels never seen
Before this time, O Bharata. !

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

सचर अचर सब जगत कों देखहु एकहि ठौर ।
मेरे तन में, देखनो चाहत जो कछु और ॥ ७ ॥

7. Behold thou Universe entire
Of things that move and do not move,
Within my body, Gudakesh,
With aught else thou wishest to see.

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

तुम इन आंखिन सों कबहु देखि न सकिहौ मोइ ।
दरसप्राप्ति हित देतहों दिव्यदृष्टि मैं तोइ ॥ ८ ॥

8. But thou can'st not behold, O Parth,
My glorious form with human eyes;
Therefore I grant thee sight divine,
With which see thou My Sovran Yog.

संजय उवाच—

एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

संजय ने कहा ।

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अस कहि सुनहु नरेश !
दिखरावा कौन्तेय कों परम स्वरूप विशेष ॥ ९ ॥

Sanjaya said:—

9. Having thus spoken, King of men!
Hari, the Lord of Yoga, then,
Show'd His Celestial Form to Parth,
Pervading, glorious, resplendent.

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

मुख अरु नयन अनेक जहँ अद्भुत दरश अनेक ।
दिव्याभरण अनेक अरु उद्यत शस्त्र न एक ॥ १० ॥

10. With many mouths and eyes and heads,
With many visions marvellous,
With many ornaments divine,
With many godly weapons deckt.

दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनंतं विश्वतोमुखम् ॥११॥

दिव्य गंध लेपन तथा दिव्य वसन वर माल ।
सर्वाश्चर्य अनंत सो सब विधि वक्त्र विशाल ॥ ११

11. With wreaths divine and vestments clad,
And scented with celestial balm,
All-wonderful and resplendent,
Boundless and facing every side.

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥१२॥

रवि सहस्र को एकदा नभ प्रकाश जस होइ।
तेज महात्मा कौ अमित ता सम लखियै सोइ॥ १२॥

12. Now, if a thousand suns atonce
Burst forth together in the sky,
That might resemble, King of men !,
The Glory of that Mighty One.

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा॥१३॥

ता एकहि में सर्व जग बट्यौ अनेक प्रकार।
देवेश्वर के अंग में लख्यो पार्थ तिहि बार॥ १३॥

13. There Pandu's mighty son beheld
The Universe in many parts,
Gather'd together in the frame,
Celestial, of that God of gods.

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत॥१४॥

भयो धनंजय चकितचित अरु अति पुलकित गात।
हाथ जोर शिर नाइकै प्रभु सों बोल्यौ बात॥ १४॥

14. Then he, the Conqueror of Wealth,
Was fill'd with sudden awe, O King,
His hair upstanding, he bowed down
Before the Lord, and thus addressed:—

अर्जुन उवाच—

पश्यापि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषीश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

अर्जुन ने कहा।

हे देवदेव जगत्पते ! तव देह में मैं देखता।
सम्पूर्ण प्राणि विशेष का दल और सारे देवता ॥
ब्रह्मा विराजे दीखते आसन कमल के पै वहाँ।
सब दिव्य देह महर्षि पन्नग देख पड़ते हैं जहाँ ॥ १५ ॥

Arjuna said:—

15 Within Thy from, O God, I see,
The gods of diverse grades divine,
Brahma, the Lord, on lotus seat,
And Rishis great and Serpent-kings.

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥१६॥

अगनित उदर मुख नेत्र बाहू दीखते तेरे प्रभो !
चहुँ ओर तें बिनु अन्त भासत रूप तेरौही विभो ॥
नहिं आदि मध्य न अन्त तेरौ जाइ मोपै कछु लखो।
विश्वेश ! तुम हो विश्वरूप दया सदा मोपै रखो ॥ १६ ॥

16. With mouths and eyes and arms and breasts,
Unnumber'd, I behold Thy frame,
Outset, middle nor end of Thee,
I find, O Thou of Endless Form;

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमंतम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समंताद्
दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

उन्नत विशाल सुभाल पर सुंदर किरीट दिये हुए।
कर में गदा कौमोदकी अरु चारु चक्र लिये हुए॥
अनुपम अगिन रवि तुल्य तेज दिगंत में फैला रहे।
चहुँ ओरतें यों जगमगावत हे प्रभो तुम दिख रहे॥ १७॥

17. Shining a mass of splendour great,
With discus, mace and diadem,
Blazing as fire, bright as the sun,
Hard to behold and measureless;

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यम्
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

तुम ज्ञेय हो अक्षर परम हो विश्व के निधि हो तथा।
अव्यय सनातन धर्मरक्षक तव परम पावन कथा॥
मेरी समझ में हो सनातन बस तुम्हीं संसार में।
अरु हो पुरुष केवल तुम्हीं यह जान पड़ता है हमें॥ १८॥

18. Immortal, Worthy to be known,
Lofty beyond all human thought,
Eternal Dharma's Prop art Thou,
The worlds' Supreme Support as well.

अनादिमध्यांतमनंतवीर्य-
मनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रम्
स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतम् ॥१६॥

शशि सूर्य नेत्र अनन्त बाहु अनन्त वीर्य अनन्त कों ।
मैं आदि मध्य विहीन देखों आप श्रीभगवन्त कों ॥
अत्यन्त दीप्त हुताश सम मुख ज्योति वाले आपुहो ।
या विश्वकों निज तेजसों प्रभुजी तपावत आपुहो ॥ १९ ॥

19. No source, middle nor end of Thee,
Infinite Force, with countless arms;
With sun and moon for glorious eyes,
I see Thy face as burning fire.

द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदम्
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

आकश भूतल मध्य में जो है प्रभो ! यह अन्तराल ।
अरु सब दिशा हू व्याप्त हैं तुम एकसोंही विश्वपाल ॥
यह देखि कैं विकराल रूप विशाल अनुपम जो अहै ।
त्रैलोक्य है भयभीत कैसे तेज तेरौ सहि सकै ॥ २० ॥

20. By Thee alone is fill'd the earth,
The heavens and the middle sphere,
The triple world sinks down, O Lord,
Before Thine awe-inspiring form.

अमी हि त्वां सुरसंघा विशंति
केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणंति ॥
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥

ये प्रभो ! अगनित अमरगन देह तेरे में पड़े।
कोउकोउ अति भयभीत ह्वै कर हाथ जोड़े हैं खड़े ॥
"स्वस्ति" कहि कहि कै महर्षी सिद्धगण अस्तुति करैं।
विश्वेश ! पूरी रीतिसों तेरी, तथा दर्शन लहैं ॥२१ ॥

21. These hosts of gods enter Thy frame,
Some struck with awe join their palms,
Banded Maharshis, Siddhas hail !
Chanting Thy praises, singing songs.

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षंते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

आदित्य वसु गंधर्व रुद्र समीर विश्वेदेवहू।
अश्विनिकुमार मुनीशगण अरु पितर ठाढ़े दिश चहू ॥
हे विश्वरूप जगत्पते ! सब रूप तेरो लखि रहे।
ह्वै चकितचित दृगफारिकै, आश्चर्य में सब मुग्ध से ॥ २२ ॥

22. Rudras, Adityas and Vasus,
And Sadhyss, Vishwas, Ashvins, too,
Maruts, Ushmapas, Gandharvas.
And Yakshas, Siddhas, Asuras, see.

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाऽहम् ॥२३॥

बहु नेत्र मुख भुज जघन पाद प्रभूत दंष्ट्रासों कराल ।
बहु जठर रूपमहान लखि तव व्यथित मैं अरु लोकपाल ॥२३॥

23. Thy mighty form with many mouths,
With many eyes and arms and feet,
Vast-bosom'd, set with fearful teeth,
The worlds and I behold with awe.

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा
धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो ॥२४॥

हे विश्वपति ! आकाश तें पृथ्वी तलक तुम लग रहे ।
बहु वर्ण नेत्र विशाल मुख चहुँ ओर फैले दिख रहे ॥
त्रैलोक्य भासक तेजपुंज न कोउ जाकों सहिसकै ।
धीरज छुड़ावत मोर नहिं कोउ और हू धीरज धरै ॥ २४ ॥

24. Thou touchest heaven, bright in hues,
With open mouths and shining eyes,
At sight of Thee my heart doth quake,
No strength is left nor peace, O God.

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसंनिभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

प्रलय कालिक अगिन सम डाढ़ें कराल बिलोकिकै।
संदीप्त भयकारक, मुखनकों ताकि नहिं धीरज रहै ॥
मोकों कछुक नहिं सूझ आवत दिसनकों भूलत अहों ।
मोपरि दया करु नाथ ! जगधर ! देवदेव ! अधीरहों ॥ २५ ॥

25. Like Time's devouring flames I see
Thy teeth, upstanding, awful-jaw'd,
I know not where to shelter find,
Mercy, O God, Refuge of Worlds.

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

ये पुत्र सब धृतराष्ट्र के भगवन् ! महीपति और हू ।
भीषम अचारज द्रोण राधापूत है श्रीनाथजू ॥
नेता हमारी सेनके हू जो इहाँ आये लड़न ।
मित्रारि दोऊ दलनके हे दुःखभयदारिदहरन ! ॥ २६ ॥

26. The sons of Dhritarashtra here,
The multitude of all these kings,
Bhishma and Dron and Suta's son,
And all the warriors on our side;

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशंति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनांतरेषु
संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥२७॥

तेरे मुखन बिच शीघ्र धसते जो भयानक उग्र हैं।
जिनकी कराल विशाल डाढ़ें अगिन सम दस दिश दहैं।
कोउ कोउ डाढ़न बिच लटकते दृष्टिगोचर हैं विभो!
शिर चूर्ण जिनके ह्वै रहे नहिं बचत दीखत हैं प्रभो ॥ २७ ॥

27. Rush down into Thy gaping mouths,
Tremendous-toothed, terrible,
Some caught within the gaps of teeth
Are seen, their heads to powder crush'd.

यथा नदीनां बहवोऽबुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवंति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशंति वक्त्राण्यभिविज्वलंति ॥२८॥

जैसे नदी बहु वेगतें धावत दिखाई देत हैं।
अरु पहुँच करि तट निकट वे सब परत धाइ समुद्र में ॥
तैसेहिं ये नरपाल हू सब आपुके मुखमें धसैं।
अरु अगिन सम विकराल डाढ़न बीच पिसते दिखपड़ें ॥ २८ ॥

28. As streams impetuous rush on,
Hurling their waters into seas,
So fling themselves into Thy mouths
These mighty men, these Lords of Earth.

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा
विशंति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशंति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

जैसे भड़कती अगिन बिच आकर स्वयं पड़ते पतंग ।
अरु नाश हो जाते वहीं जलकर झुलस कर एकसंग ॥
तैसेहि ये धावत विवश सब लोक हू सर्वस विभो !
तुम्हरे मुखन बिच धाइकै नसजारहे हैं हे प्रभो ! ॥ २९॥

29. As moths with quicken'd speed rush forth
Into a blazing flame to die,
So also these, in haste, per force,
Enter Thy mouths, to perish there.

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रम्
भासस्तवोग्राः प्रतपंति विष्णो ॥३०॥

व्याप्त करि सब जगत कों निज तेजसों चहुँ ओरते ।
ग्रसते ज्वलित तुम मुखनि तें सब लोकगण कों चाटते॥
हे देव व्यापनशील सब जग मांहि संतत हे विभो !
तव दीप्ति है अति उग्र जो सब कों तपाती है प्रभो ! ॥ ३०॥

30. On ev'ry side, licking up men,
With fiery tongues, Thou dost devour,
Thy splendour filleth all the worlds,
With blazing rays and burning fire.

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशंति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनांतरेषु
संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥२७॥

तेरे मुखन बिच शीघ्र धसते जो भयानक उग्र हैं।
जिनकी कराल विशाल डाढ़ें अगिन सम दस दिश दहैं।
कोउ कोउ डाढ़न बिच लटकते दृष्टिगोचर हैं विभो !
शिर चूर्ण जिनके ह्वै रहे नहिं बचत दीखत हैं प्रभो ॥ २७ ॥

27. Rush down into Thy gaping mouths,
Tremendous-toothed, terrible,
Some caught within the gaps of teeth
Are seen, their heads to powder crush'd.

यथा नदीनां बहवोऽबुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवंति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशंति वक्त्राण्यभिविज्वलंति ॥२८॥

जैसे नदी बहु वेगतें धावत दिखाई देत हैं।
अरु पहुँच करि तट निकट वे सब परत धाइ समुद्र में ॥
तैसेहिं ये नरपाल हू सब आपुके मुखमें धसैं।
अरु अगिन सम विकराल डाढ़न बीच पिसते दिखपड़ें ॥ २८ ॥

28. As streams impetuous rush on,
Hurling their waters into seas,
So fling themselves into Thy mouths
These mighty men, these Lords of Earth.

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा
विशंति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशंति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२६॥

जैसे भड़कती अगिन बिच आकर स्वयं पड़ते पतंग ।
अरु नाश हो जाते वहीं जलकर झुलस कर एकसंग ॥
वैसेहि ये धावत विवश सब लोक हू सर्वस विभो !
तुम्हरे मुखन बिच धाइकै नसजारहे हैं हे प्रभो ! ॥ २९॥

29. As moths with quicken'd speed rush forth
Into a blazing flame to die,
So also these, in haste, per force,
Enter Thy mouths, to perish there.

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रम्
भासस्तवोग्राः प्रतपंति विष्णो ॥३०॥

व्याप्त करि सब जगत कों निज तेजसों चहुँ ओरते ।
ग्रसते ज्वलित तुम मुखनि तें सब लोकगण कों चाटते ॥
हे देव व्यापनशील सब जग मांहि संतत हे विभो !
तव दीप्ति है अति उग्र जो सब कों तपाती है प्रभो ! ॥ ३० ॥

30. On ev'ry side, licking up men,
With fiery tongues, Thou dost devour,
Thy splendour filleth all the worlds,
With blazing rays and burning fire.

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यम्
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

मोकों बताओ देववर! तुम कौन हो का करत हो?
क्यों रूप यह धारण कियौ? मोपरि दया करि सो कहो॥
जानन चहत हों हे दयामय! खोलदो इस भेद को।
कारण नहीं मैं जानता; मुझको बताओ हे प्रभो!॥ ३१॥

31. Tell me what awful Form art Thou?
I bow to Thee, have mercy, Lord,
Thine inner Self I wish to know,
Thy streaming life bewilders me.

श्रीभगवानुवाच—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यंति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

श्रीभगवान ने कहा।

लोकगण कौ नाश कर्त्ता बढ़ि रह्यौ मैं काल हों।
नाश लोकन कौ करनकों यहँ उपस्थित आज हों॥
योधा खड़े जो प्रति अनी जिन देखता है तू यहां।
तू भी न मारैगा जो इनको तो भी बच सकते कहां॥ ३२॥

The Blessed Lord said:—

32. I am the Time that wrecks the world,
Made manifest on earth, to slay;
Even without thee, none of these,
In hostile ranks, O Prince, shall live.

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३॥

तातें उठौ अर्जुन ! लड़ौ यश लेउ शत्रुन जीतिकै।
राज्य सुख अरु सम्पदा के भोग भोगौ नीति तें ॥
पहिले ही मैंने इन सबनकों मार डारौ है इहां।
सव्यसाचि ! निमित्त लगि होजाउ ठाढ़े तुम वहां ॥ ३३ ॥

33. Therefore arise and win renown,
Conquer thy foes and wealth enjoy,
By Me they are already slain,
Be thou My tool, Left-handed one.

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः
युद्ध्यस्व जेताऽसि रणे सपत्नान् ॥३४॥

पहिले ही मैंने मार डारे हैं सबी योधान को।
भीषम जयद्रथ कर्ण द्रोण समस्त सेनप हु अहो ! ॥
मेरे ही मारे सार तू, मत तू दुखी हो, मित्रवर !
जीतगा शत्रुन को समर बिच, वेगि उठके युद्धकर ॥ ३४ ॥

34. Dron and Bhishm and Jayadratha,
Karna and all the warriors great,
Are slain by Me; destroy them now,
Fight ! Thou shalt sure thy rivals crush.

संजय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

संजय ने कहा।

या भांति तें श्रीकृष्णजी के पार्थ सुनिकै ये वचन ।
कर जोरि थरथर काँपता विश्वेश सों लागा कहन ॥
गद्गद गिरा ह्वै नमत पुनि पुनि और भुइँ में लोटता ।
विस्मित हृदय कछु गिड़गिड़ाता और पुनि कछु सोचता॥३५॥

Sanjaya said:—

35. Having these words of Keshav heard,
The crowned Chief, all trembling still,
With join'd palms and bowing low,
In broken accents, Krishn address'd:—

अर्जुन उवाच—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवंति
सर्वे नमस्यंति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

अर्जुन ने कहा।

आनन्दमय यह उचित ही है विश्व सब हे विश्वरूप !
तेरी प्रशंसा कीर्ति करिकै प्रेम पद पावत अनूप ॥
पूर्वादि दिशाकों नाथ ! निश्चर डरत काँपत द्रवत हैं ।
समुदाय सिद्धन के चहूँ दिश दृष्टिगोचर नमत हैं ॥३६॥

Arjuna said.—

36. "Hrishikesh in glory Thine,
Rightly the world rejoiceth,
The demons to all quarters fly
In fear; the hosts of Siddhas hail!

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ॥
अनंत देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

वे सब नमन क्यों नहिं करें तुम देवदेव अनन्त हो।
गुरुतम महात्मा आपु हो स्रष्टाहुतें बढ़ कर प्रभो ! ।
जो कुछ असत सत् है इहां तुम ताहुतें ऊपर रहौ।
देवेश अक्षर ब्रह्म अरु जगदीश तुम ही कौं कह्यौ ॥ ३७ ॥

37. "How should they otherwise, O Lord,
First Cause! greater than Brahma's Self,
Thou art the God of gods, Supreme,
Eternal, Aught and Naught, forsooth.

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥
वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनंतरूप ॥३८॥

तुम आदिदेव पुराण पूरुष विश्वधाम विशाल हो।
वेत्ता तुम्हीं अरु वेद्य हू पर धाम जग में व्याप्त हो ॥३८ ॥

38. "First of the Gods, most ancient Man,
Thou art abode of all that lives,
Knower and Known, the Dwelling place,
On Thy vast form this world is spread.

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ॥
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३६॥

आपु ही तौ वायु हैं यम अग्नि वरुण शशांक हू ।
आपुहि पितामह तिनहु के प्रपितामहहु हे नाथजू ॥
मैं नमन करता आपको हे विश्वपाल हजार बार ।
फिरहू प्रणत ह्वै दण्डवत करता हों तुमको बहु प्रकार ॥३९॥

39. "Vayu and Yam and Agni, too,
Thou art the Moon, Varun, Grandsire,
Hail! hail to Thee!! a thousand times,
Hail! unto Thee, again, again.

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥
अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

अग्रते अरु पृष्ठतें सब ओरतें तुमको प्रभो !
हे सर्वरूप सदा हमारी बार बार नती विभो ! ॥
अति अमित विक्रम तथा बलकों नाथ तुम नित धरत हो ।
हो सर्व तुम या हेतु तें सब जगत व्यापन करत हो ॥४०॥

40. "Prostrate in front, prostrate behind,
Prostrate on ev'ry side to Thee,
In power boundless, measureless,
Thou holdest all, and all art Thou.

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ॥
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

तेरी प्रभो इस भांति महिमा को नहीं जिय जानिकें।
संप्रीतितें वा भूलतें तुमको सखा निज मानिकें॥
मैंने तुम्हें यदि कृष्ण यादव हे सखा बोला कड़ा।
उपहासहित जो आपुकों कीया असत्कृत हो बड़ा ॥४१॥

41. "If deeming Thee but as a friend,
I call'd Thee Krishna, Yadava,
Unmindful of Thy Majesty,
And careless in my love of Thee,

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ॥
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

विहार शय्यासन भोग माहीं
परोक्ष प्रत्यक्ष अकेल जाहीं ॥
कहूँ असत्कार कियो प्रभो ! जो
क्षमो, क्षमा मांगहुँ आपसों सो ॥४२॥

42. "If jesting, I irreverence show'd,
At play, at rest, or at the meals,
Alone, or in the midst of friends,
Forgive me, Lord, Thou Limitless !

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ॥
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥४३॥

तिहुँलोक में हे नाथ ! तेरौ अति अपार प्रभाव है।
तेरे समान न और कोऊ अधिक कौ कहँ भाव है ॥
इस चर अचर संसार के भगवन् पिता हो आपुही।
सब से बड़े गुरुदेव हू हो देवदेवहु आपुही ॥४३॥

43. "Father of worlds, of all that moves,
Superior to the Guru's Self,
There is no one like unto Thee,
Thy pow'r is known to all the worlds.

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ॥
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

तनकों नवाइ प्रणाम करि परसन्न हम तातें करें।
जैसे पिता अपराध पुत्रनकौ सहन मन सों करें ॥
अरु मित्र मित्रन के यथा प्यारे पियारिन के करें।
तैसेहि मेरे दोष हू प्रभु सहन अब आपहु करें ॥४४॥

44. Therefore I fall before Thee, Lord,
And with my body worship Thee,
Bless me as father blesseth son,
As friend doth friend, lover, his love,

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ॥
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

मोकों बड़ौ ही हर्ष अद्भुत रूप कों लखिकै भयौ।
डरतें मनहु व्याकुल रह्यौ नहिं जाइ कछु मोपै कह्यौ ॥
तातें कृपा करि पूर्वरूपहि फेर मोइ दिखाइकै।
सांत्वन करौ हे विश्वभासक ! विश्वरूप हटाइकै ॥४५॥

45. "Here have I seen what none e'er saw;
My heart is glad, yet faileth me;
Show me, O God, Thy Normal form,
Mercy, O God of gods, Supreme.

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ॥
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

माथे मुकुट धारण किये कर में सुचक्र गदा लिये।
दर्शन चहत हों फेर तुम्हरे जैस तुम पहिले दिये ॥
ताही प्रभो ! नररूप को पुनि आपु दर्शन दीजिये।
हे विश्वरूप सहस्रबाहो ! अब कृतारथ कीजिये ॥४६॥

46. "With crown and mace and discus deckt,
I fain would see Thee as before,
Assume again Thy human form,
O Thousand-arm'd, of many shapes."

श्रीभगवानुवाच—
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ॥
तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

श्रीभगवान ने कहा ।
तेरे सिवा नहिं दूसरे ने जो कबहुँ देख्यौ अनूप ।
मैंने मुदित ह्वै के दिखायौ योगबल ते वह सरूप ॥
व्यापक विशाल अनन्त जो है तेज सों परिपूर्ण जो ।
जो सब तें उत्तम रूप है अरु विश्व कौ आधार सो ॥ ४७ ॥

The Blessed Lord said:—

47. By Grace of Mine, thus hast thou seen
This lofty, transcendental form,
All radiant, glorious, limitless,
That none except thyself beheld.

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ॥
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

नहिं वेदसों नहिं यज्ञसों नहिं दानसों तपसों नहीं ।
नहिं अन्यहू व्रत कठिन सों यह रूप दीखत है कहीं ॥
या लोक में तौ कितहु नहिं कोऊ सकत है वीरवर !
देखन जो तैंने आज ही देखौ है अर्जुन ! दृष्टिभर ॥ ४८ ॥

48. Nor sacrifice, nor Vedic lore,
Nor penance, alms, nor works, indeed,
Can win the vision of this Form
Which, Best of Kurus, thou hast seen.

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ॥
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥४६॥

अर्जुन ! डरहु मत देखिकै या घोर रूप प्रचण्ड को ।
धीरज धरहु मन थाम करि दिलकों दिलासा मित्र दो ॥
भय त्यागि करि ह्वै मुदित मन अब देख तू मोकों वही ।
अब मैं दिखावत हों असल सूरत जो पहिले की रही ॥ ४९ ॥

49. Be not bewilder'd or afraid,
Because thou hast this Form beheld,
Cast fear away and let thy heart
Rejoice at this normal shape.

संजय उवाच—

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ॥
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

संजय ने कहा ।

ऐसे कहि हरि पार्थ तें फेरि होई नररूप ।
पूर्व दिखायो रूप निज निर्भय कियो सो भूप ॥ ५० ॥

Sanjaya said:—

50. Having thus said to Arjuna,
He did His normal form resume,
And then consol'd him, terrified,
Assuming gentle mien again.

अर्जुन उवाच—

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

अर्जुन ने कहा ।

लखि तव मानुष रूप यहि सुनहु जनार्दन ! बात ।
शान्त भयो अब चित्त मम अरु प्रफुलित है गात ॥ ५१ ॥

Arjuna said:—

51. "Beholding this Thy gentle form,
Thy human shape, O Janardan,
I am collected once again,
And have become myself, O Lord".

श्रीभगवानुवाच—

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥५२॥

श्रीभगवान ने कहा ।

जो तैंने अर्जुन ! लख्यो दुर्लभ और अनूप ।
नित्य देवगण हू चहत देखन सोइ सरूप ॥ ५२ ॥

The Blessed Lord said:—

52. This form of Mine thou hast beheld,
Is very hard to see, O Parth,
The Shining Ones for ever long
That universal form to see.

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

जो तोकों दर्शन मिल्यौ ताहि न पावत कोइ ।
वेदपाठ तप दान मख करतहु मिलै न सोइ ॥ ५३ ॥

53. Nor can I thus be seen by man,
Thro' Ved, penance or sacrifice,
As Thou hast seen this form of Mine,
O dearest friend, remember this.

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥

विश्वरूप दर्शन चहै मोर परंतप जोइ ।
एकहि साधन ताहि कौ भक्ति अनन्यहि होइ ॥ ५४ ॥

54. But by devotion true, alone,
I may be thus perceiv'd by one,
I may be seen, I may be known,
I may be entered, Kunti's son.

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥५५॥

मेरे ही हित कर्म करि मो में चित्त लगाइ ।
संग रहित निर्वैर सो भक्त मोर पद पाइ ॥ ५५ ॥

55. He who doth actions for My sake,
Who looks on Me as Goal Supreme,
And self surrenders, Pandu's son,
That guileless one must come to Me.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूप-दर्शनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

——::❀::——

इति विश्वरूपदर्शनयोगोनाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

ओ३म् तत् सत्

——::✻::——

Here Endeth The Eleventh Discourse Entitled THE VISION OF THE UNIVERSAL FORM.

——::❀::——

अध्याय १२

अर्जुन उवाच—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

अर्जुन ने कहा।

यहि प्रकार नित युक्त ह्वै भक्त भजत जो तोइ।
अरु जो अज अक्षर भजैं तिन्ह में उत्तम कोइ? ॥ १ ॥

Arjuna said:—

1. "Those devotees that worship Thee,
With ever harmonised souls,
And those that seek the Undefin'd,
Whether of these is best in Yog?"

श्रीभगवानुवाच—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

श्रीभगवान ने कहा।

जो मो में मन लाइकै भजै नित्ययुत मोइ।
परश्रद्धासंयुक्त वह मम मत उत्तम होइ ॥२ ॥

The Blessed Lord said:—

2. Who with their minds intent on Me,
Worship Me ever harmonised,
With faith supreme endow'd, attuned,
These, to My mind, are Yogis best.

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिंत्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

जो अचिन्त्य अक्षर अकथ अरु कूटस्थ महान ।
सर्वव्याप्त अव्यक्त पुनि नित्य अचल भगवान ॥ ३ ॥

3. Yet those that worship Absolute,
The Nameless One, Unmanifest,
Pervading all, Unthinkable,
Unchanging and Eternal, too,

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥
ते प्राप्नुवंति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

समदर्शी सर्वत्र जो सबकौ हितकर होइ ।
सब इन्द्रिन कों जीति कै भजै सो पावै मोइ ॥ ४ ॥

4. Keeping the senses in control,
Regarding ev'rything the same,
Rejoicing in the good of all,
These also surely come to Me.

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

निर्गुण में रतचित्त जे तिनकों दुख अति होइ ।
निराकार अव्यक्त गति सहज सुलभ नहिं कोइ ॥ ५ ॥

5. But harder is the task of those
That fix their minds on Absolute,
For it is not an easy path,
For souls embodied to attain.

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥६॥

मो में जो सब कर्म तजि मो में ध्यान लगाइ ।
मोकों ह्वै तत्पर भजै सो अनन्य गति पाइ ॥ ६ ॥

6. Those, verily, that acts renounce,
Are ever bent on Me alone,
And worship Me with minds intent,
Are surely harmonised by Yog.

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

या विधि निसदिन प्रेमयुत मोर लगन है जाइ ।
शीघ्र मृत्यु संसार तें मैं उधरत हों ताइ ॥

7. Of these whose hearts are fix'd on Me
Protector I become at once,
And lift them from the Ocean, Parth,
Of ceaseless rounds of births and deaths.

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

तातें मो में मन धरहु मो में बुद्धि लगाउ ।
आगे मोही में बसहु मन में निश्चय लाउ ॥ ८ ॥

8. Place, then, thy mind on Me alone,
Let Reason thine enter Me, too,
Then doubtless, Parth, thou shalt abide
In Me hereafter, evermore.

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥९॥

जो मो में नहिं कर सकत मन कों थिर कौन्तेय !
तौ तू मेरी प्राप्ति लगि योगहि में चित देय ॥ ९ ॥

9. But if thou canst not concentrate
On Me with firm and steady mind,
Then by the Yog of Practice seek
To reach Me, Conqueror of Wealth.

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

अभ्यासहु जो नहिं बनै करहु पार्थ मम कर्म ।
मेरे हित कर्महु करत पावहु सिद्धि सधर्म ॥ १० ॥

10. If even thou canst not apply
Thyself to constant practice here,
Be then intent on service Mine,
And thou shalt sure perfection gain.

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

याहूके तू करनकों जो नहिं समरथ होइ ।
सब कर्मज फल त्याग करि आश्रय लगि गहु मोइ ॥ ११ ॥

11. If even this thou canst not do,
Then, taking thy refuge in Me,
Renounce all fruit of action done,
And try to gain control of self.

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥१२॥

ज्ञान श्रेष्ठ अभ्यास तें ज्ञानहुँ तें बढ़ ध्यान ।
कर्मज फल कौ त्याग पुनि जाते शान्तिमिलान ॥ १२ ॥

12. For Wisdom's better than effort,
And better still to meditate,
Renunciation's best of all,
Which leadeth one to final rest.

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

द्वेषरहित करुणायतन जो सबको हितु होइ ।
निर्मम निरहंकार सम क्षमावान जो कोइ ॥ १३ ॥

13. He who to none beareth ill-will,
Is friendly and compassionate,
Free from attachment, egoless,
Balanced in pleasure and in pain;

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

दृढ़निश्चय सन्तुष्ट नित योगी यतचित जोइ ।
मो में अर्पित चित्त बुधि भक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १४ ॥

14. Content and ever harmonised,
Determinate and self-controll'd,
With mind and reason placed in Me,
Such devotee is dear to Me.

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

जो काहूसों नहिं डरत नाहिं डरावत जोइ।
हर्षक्रोधउद्वेगभय मुक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १५ ॥

15. From whom the world shrinks not in fear,
Who himself from the world shrinks not;
Who's free from joy and wrath and fear;
Such man is always dear to Me.

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

निस्पृह चतुर पवित्र अरु उदासीन जो कोइ।
व्यथारहित त्यागी परम भक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १६ ॥

16. And he who nothing wanteth here,
Is pure, expert and passionless,
Untroubled e'er and unattach'd,
Such devotee is dear to Me.

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जाकों हर्ष न शोक कछु इच्छा द्वेष न होइ।
त्यागी शुभ अरु अशुभ कौ भक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १७ ॥

17. Who neither hateth nor exults,
Nor grieveth nor desireth aught,
Renounceth good and evil both,
Devoted, he is dear to Me.

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥१८॥

शत्रु मित्र में सम तथा समहि मान अपमान ।
संगरहित शीतोष्ण सुख दुख में एक समान ॥ १८ ॥

18. Alike to friend and enemy,
Alike in fame and infamy,
Alike in cold and heat, as well,
In pleasure and in pain the same,

तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येनकेनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

समनिन्दास्तुति धीर गृहरहित मौनयुत जोइ ।
यथालाभसंतुष्ट जो भक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १९ ॥

19. Taking as equal praise and blame,
Silent and wholly harmonised,
Homeless and firm and devoted,
Such man is very dear to Me.

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

यहि धर्मामृत जो करत श्रद्धायुत नर पान ।
अरु मो में तत्पर रहत परम भक्त सोइ जान ॥ २० ॥

20. Those, verily, that do partake
Of this immortal Wisdom taught,
Endow'd with faith in Me, devout,
Are all surpassing dear to Me.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगोनामद्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

——::❀::——

इति भक्तियोगोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

ओ३म् तत् सत्

——::❀::——

Here Endeth The Twelfth Discourse
Entitled
THE PATH OF LOVE.

——::❀::——

अध्याय १३

अर्जुन उवाच—

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥१॥

अर्जुन ने कहा ।

प्रकृति कहा अरु पुरुष को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ।
ज्ञान ज्ञेय को भेद हू जानन चहों सर्वज्ञ ॥ १ ॥

Arjuna said:—

1. "Matter and Spirit and the Field
And Knower of the Field, as well,
Wisdom and that which should be known,
These I would learn,O Keshava".

श्रीभगवानुवाच—

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥२॥

श्रीभगवान ने कहा ।

यहि शरीर कुन्तीतनय क्षेत्र कहावत तात ।
जो जानत है क्षेत्रकों सो क्षेत्रज्ञ कहात ॥ २ ॥

The Blssed Lord said:—

2. The human frame is call'd the Field,
Bear this in mind, O Kunti's son !
While he who knoweth it is call'd,
The Knower of the Field, forsooth.

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥३॥

हे भारत! क्षेत्रज्ञ मोइ सब क्षेत्रन में मान।
ज्ञान क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कौ सब तें उत्तम जान ॥ ३ ॥

3. Know Me as Knower of the Field
In all the Fields, O Bharata!
Knowledge of Field and Knower, too,
Is knowledge true, so I presume.

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥४॥

कहा क्षेत्र का विधि अहै कहा कार्य है तासु।
ताको कहा प्रभाव है मोतें सुनहु समासु ॥ ४ ॥

4. What that Field is, and what 'tis like,
How modified, and whence it is,
And what is He and what His pow'r,
All these, in short, now hear from Me.

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥५॥

बहुप्रकार ऋषिवृन्द ने गायो है यहि ज्ञान।
ब्रह्मसूत्रपद बीचहू ताको अहै बखान ॥ ५ ॥

5. Rishis have sung in diverse ways,
In many a varied chant as well,
In forms of aphorism divine,
With perfect logic and accent.

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥६॥

महाभूत ऽहंकार पुनि बुद्धि और अव्यक्त ।
पञ्च विषय इन्द्रियन के दश इन्द्रिय इक चित्त ॥ ६ ॥

6. The Elements and Egoism,
The Reason and Unmanifest,
The Senses ten and one in all,
And fivefold Objects of the Sense;

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥७॥

इच्छा धीरज चेतना सुख दुख अरु संघात ।
द्वेष सहित संक्षेपतें क्षेत्रविकार कहात ॥ ७ ॥

7. Desire, Aversion, Pleasure, Pain,
Embodied Frame, Intelligence,
And Firmness : these in brief describ'd,
Are Field and its mutations, Parth.

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥८॥

क्षमा अहिंसा सरलता शौच अदम्भ अमान ।
मननिग्रह थिरता तथा गुरुसेवा सन्मान ॥ ८ ॥

8. And modesty and simple faith
And harmlessness, forgiveness, too,
Service of Guru, rectitude
And purity and self-restraint,

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥६॥

इन्द्रियार्थ वैराग्य पुनि संतत अनहंकार।
जन्म जरा रुज मृत्यु के बहु विधि दुःख बिचार॥ ९ ॥

9. Dispassion for objects of sense,
Absence of egoism, insight
Into the pains and ills of birth,
Of death and age and sickness, too;

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥१०॥

अहंभाव आसक्ति नहिं पुत्रादिक में जाइ।
सदा रहै समचित्तता इष्ट-अनिष्टहु पाइ ॥ १० ॥

10. Detachment and absence of love
For son or wife or home or kin,
And constant balance of the mind
In cherish'd and uncherish'd things;

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥११॥

छाँड़ि अन्य की लगन कों अटल भक्ति मो पाहिं।
सेवन करत इकंत कौ रमत न बहु जन माहिं॥ ११ ॥

11. Unflinching faith in Me thro' Yog,
And disregard for earthly things,
Resort to a sequester'd place,
Absence of wish for company,

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥१२॥

आत्मज्ञान दृढ़ता सदा तत्त्वज्ञान बिच दृष्टि ।
ज्ञान होत इनतें, अलग अज्ञानहि की सृष्टि ॥ १२ ॥

12. Fixture in knowledge of the Self,
Direct perception of the truth,
All this I Wisdom take to be,
All else is ignorance, indeed.

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१३॥

कहहुँ जो जानन जोग है और मुक्तिदातार ।
कहत बनै सदसत न सो ब्रह्मअनादि अपार ॥ १३ ॥

13. And let me now declare to thee
That which thou oughtst to know in full,
Which knowledge, life immortal gives,
And deals with the Supreme Essence.

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१४॥

जाके हैं सब ओर ही हाथ पांव मुख कान ।
मस्तक नेत्र अनन्त, जो सब में व्याप्त महान ॥ १४ ॥

14. He ev'rywhere hath hands and feet,
So also faces, eyes, and heads,
And He hath ears on ev'ry side,
Encircling all that lives and breathes.

सर्वेंद्रियगुणाभासं सर्वेंद्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१५॥

सर्वेन्द्रियभासक सदा यद्यपि इन्द्रियहीन।
पृथक रहत सबकों धरत निर्गुण गुणबिचलीन ॥ १५ ॥

15. Shining within all gates of sense,
Yet free from shackles of the same,
Detach'd from all, yet main support,
Enjoying all, yet unattach'd;

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् ॥१६॥

भीतर बाहर सबनके चरहु अचर है जोइ;
सूक्ष्मरूप अज्ञेय पुनि दूर निकट हू सोइ ॥ १६ ॥

16. Without all beings and within,
Immovable and movable,
By reason of His subtlety,
He is at hand and yet distant.

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च यज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१७॥

भूतन माहि बट्यौ न सो बट्यौ समान लखात।
भूतन कौ स्रष्टा वही पालक घालक तात ! ॥ १७ ॥

17. Though undivided yet He lives
As distributed mid all things,
He should be known as Prop of all,
Creator and Destroyer, hence.

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥१८॥

वहि जोतिनकी जोति है तमतें परै कहाइ।
ज्ञान ज्ञेय अरु गम्य है सब के हृदय फुराइ ॥ १८ ॥

18. He is the Light of Lights, forsooth,
Beyond all darkness said to be,
Knowledge, its object, all in one,
And seated in the hearts of all.

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१९॥

ज्ञान ज्ञेय अरु क्षेत्र हू तोकों दिये बताय।
जिनहि जानि मेरौ भगत मौ बिच जात समाय ॥ १९ ॥

19. The Field, its knowledge, and its path,
Have I in brief described to Thee,
My devotee who knows this all
Enters My being, rest assured.

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकरांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥२०॥

प्रकृति पुरुष इन दोउन को सदा अनादिहि मान।
गुण बिकार कों प्रकृतितें भयौ पार्थ ! पहिचान ॥ २० ॥

20. Now know that Matter and the Soul
Are both without commencement, Parth,
Know also thou that qualities
Are all alike of matter born.

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२१॥

कर्त्ता कारण कार्य में प्रकृतिं हेतु कहिजाइ ।
सुखदुखके भोगनविषै हेतु पुरुष कहलाइ ॥ २१ ॥

21. Matter is call'd the base of all,
The source of causes and effects,
While Spirit is condition prime
Of sensing joy and pain of things.

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२२॥

भोगत प्रकृतिस्थित पुरुष प्रकृतिजन्य गुणग्राम ।
ताही कारण लहत है जन्म असत सत ठाम ॥ २२ ॥

22. Coupled with matter, human soul
Useth its diverse qualities;
Attachment to these qualities
Breeds good and evil births for man.

उपद्रष्टाऽनुमंता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥२३॥

द्रष्टा अनुमन्ता विभू भर्त्ता भोक्ता जोइ ।
परमात्मा जाकों कहत फुरै देहविच सोइ ॥ २३ ॥

23. And Permitter and Looker-on,
Supporter and Enjoyer, too,
The Lord Supreme, the Self Supreme,
Thus is the Soul embodied known.

अध्याय १२

अर्जुन उवाच—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

अर्जुन ने कहा।

यहि प्रकार नित युक्त ह्वै भक्त भजत जो तोइ।
अरु जो अज अक्षर भजैं तिन्ह में उत्तम कोइ ? ॥ १ ॥

Arjuna said:—

1. "Those devotees that worship Thee,
With ever harmonised souls,
And those that seek the Undefin'd,
Whether of these is best in Yog?"

श्रीभगवानुवाच—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

श्रीभगवान ने कहा।

जो मो में मन लाइकै भजै नित्ययुत मोइ।
परश्रद्धासंयुक्त वह मम मत उत्तम होइ ॥२ ॥

The Blessed Lord said:—

2. Who with their minds intent on Me,
Worship Me ever harmonised,
With faith supreme endow'd, attuned,
These, to My mind, are Yogis best.

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिंत्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

जो अचिन्त्य अक्षर अकथ अरु कूटस्थ महान ।
सर्वव्याप्त अव्यक्त पुनि नित्य अचल भगवान ॥ ३ ॥

3. Yet those that worship Absolute,
The Nameless One, Unmanifest,
Pervading all, Unthinkable,
Unchanging and Eternal, too,

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥
ते प्राप्नुवंति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

समदर्शी सर्वत्र जो सबकौ हितकर होइ ।
सब इन्द्रिन कों जीति कै भजै सो पावै मोइ ॥ ४ ॥

4. Keeping the senses in control,
Regarding ev'rything the same,
Rejoicing in the good of all,
These also surely come to Me.

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

निर्गुण में रतचित्त जे तिनकों दुख अति होइ ।
निराकार अव्यक्त गति सहज सुलभ नहिं कोइ ॥ ५ ॥

5. But harder is the task of those
That fix their minds on Absolute,
For it is not an easy path,
For souls embodied to attain.

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥६॥

मो में जो सब कर्म तजि मो में ध्यान लगाइ ।
मोकों ह्वै तत्पर भजै सो अनन्य गति पाइ ॥ ६ ॥

6. Those, verily, that acts renounce,
Are ever bent on Me alone,
And worship Me with minds intent,
Are surely harmonised by Yog.

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

या विधि निसदिन प्रेमयुत मोर लगन है जाइ ।
शीघ्र मृत्यु संसार तें मैं उधरत हों ताइ ॥

7. Of these whose hearts are fix'd on Me
Protector I become at once,
And lift them from the Ocean, Parth,
Of ceaseless rounds of births and deaths.

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

तातें मो में मन धरहु मो में बुद्धि लगाउ ।
आगे मोही में बसहु मन में निश्चय लाउ ॥ ८ ॥

8. Place, then, thy mind on Me alone,
Let Reason thine enter Me, too,
Then doubtless, Parth, thou shalt abide
In Me hereafter, evermore.

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥९॥

जो मो में नहिं कर सकत मन कों थिर कौन्तेय !
तौ तू मेरी प्राप्ति लगि योगहि में चित देय ॥ ९ ॥

9. But if thou canst not concentrate
On Me with firm and steady mind,
Then by the Yog of Practice seek
To reach Me, Conqueror of Wealth.

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

अभ्यासहु जो नहिं बनै करहु पार्थ मम कर्म ।
मेरे हित कर्महु करत पावहु सिद्धि सधर्म ॥ १० ॥

10. If even thou canst not apply
Thyself to constant practice here,
Be then intent on service Mine,
And thou shalt sure perfection gain.

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

याहूके तू करनकों जो नहिं समरथ होइ ।
सब कर्मज फल त्याग करि आश्रय लगि गहु मोइ ॥ ११ ॥

11. If even this thou canst not do,
Then, taking thy refuge in Me,
Renounce all fruit of action done,
And try to gain control of self.

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥१२॥

ज्ञान श्रेष्ठ अभ्यास तें ज्ञानहुँ तें बढ़ ध्यान ।
कर्मज फल कौ त्याग पुनि जाते शान्तिमिलान ॥ १२ ॥

12. For Wisdom's better than effort,
And better still to meditate,
Renunciation's best of all,
Which leadeth one to final rest.

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

द्वेषरहित करुणायतन जो सबको हितु होइ ।
निर्मम निरहंकार सम क्षमावान जो कोइ ॥ १३ ॥

13. He who to none beareth ill-will,
Is friendly and compassionate,
Free from attachment, egoless,
Balanced in pleasure and in pain;

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

दृढ़निश्चय सन्तुष्ट नित योगी यतचित जोइ ।
मो में अर्पित चित्त बुधि भक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १४ ॥

14. Content and ever harmonised,
Determinate and self-controll'd,
With mind and reason placed in Me,
Such devotee is dear to Me.

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

जो काहूसों नहिं डरत नाहिं डरावत जोइ ।
हर्षक्रोधउद्वेगभय मुक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १५ ॥

15. From whom the world shrinks not in fear,
Who himself from the world shrinks not;
Who's free from joy and wrath and fear;
Such man is always dear to Me.

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

निस्पृह चतुर पवित्र अरु उदासीन जो कोइ ।
व्यथारहित त्यागी परम भक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १६ ॥

16. And he who nothing wanteth here,
Is pure, expert and passionless,
Untroubled e'er and unattach'd,
Such devotee is dear to Me.

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

जाकों हर्ष न शोक कछु इच्छा द्वेष न होइ ।
त्यागी शुभ अरु अशुभ कौ भक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १७ ॥

17. Who neither hateth nor exults,
Nor grieveth nor desireth aught,
Renounceth good and evil both,
Devoted, he is dear to Me.

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥१८॥

शत्रु मित्र में सम तथा समहि मान अपमान ।
संगरहित शीतोष्ण सुख दुख में एक समान ॥ १८ ॥

18. Alike to friend and enemy,
Alike in fame and infamy,
Alike in cold and heat, as well,
In pleasure and in pain the same,

तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येनकेनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

समनिन्दास्तुति धीर गृहरहित मौनयुत जोइ ।
यथालाभसंतुष्ट जो भक्त मोर प्रिय सोइ ॥ १९ ॥

19. Taking as equal praise and blame,
Silent and wholly harmonised,
Homeless and firm and devoted,
Such man is very dear to Me.

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

यहि धर्मामृत जो करत श्रद्धायुत नर पान ।
अरु मो में तत्पर रहत परम भक्त सोइ जान ॥ २० ॥

20. Those, verily, that do partake
Of this immortal Wisdom taught,
Endow'd with faith in Me, devout,
Are all surpassing dear to Me.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो-नामद्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

——::❀::——

इति भक्तियोगोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

ओ३म् तत् सत्

——::❀::——

Here Endeth The Twelfth Discourse
Entitled
THE PATH OF LOVE.

——::❀::——

अध्याय १३

अर्जुन उवाच—

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥१॥

अर्जुन ने कहा ।

प्रकृति कहा अरु पुरुष को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ।
ज्ञान ज्ञेय कौ भेद हू जानन चहों सर्वज्ञ ॥ १ ॥

Arjuna said:—

1. "Matter and Spirit and the Field
And Knower of the Field, as well,
Wisdom and that which should be known,
These I would learn,O Keshava".

श्रीभगवानुवाच—

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥२॥

श्रीभगवान ने कहा ।

यहि शरीर कुन्तीतनय क्षेत्र कहावत तात ।
जो जानत है क्षेत्रकों सो क्षेत्रज्ञ कहात ॥ २ ॥

The Blssed Lord said:—

2. The human frame is call'd the Field,
Bear this in mind, O Kunti's son !
While he who knoweth it is call'd,
The Knower of the Field, forsooth.

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥३॥

हे भारत ! क्षेत्रज्ञ मोइ सब क्षेत्रन में मान ।
ज्ञान क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कौ सब तें उत्तम जान ॥ ३ ॥

3. Know Me as Knower of the Field
In all the Fields, O Bharata !
Knowledge of Field and Knower, too,
Is knowledge true, so I presume.

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे श्रृणु ॥४॥

कहा क्षेत्र का विधि अहै कहा कार्य है तासु ।
ताको कहा प्रभाव है मोतें सुनहु समासु ॥ ४ ॥

4. What that Field is, and what 'tis like,
How modified, and whence it is,
And what is He and what His pow'r,
All these, in short, now hear from Me.

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥५॥

बहुप्रकार ऋषिवृन्द ने गायौ है यहि ज्ञान ।
ब्रह्मसूत्रपद बीचहू ताको अहै बखान ॥ ५ ॥

5. Rishis have sung in diverse ways,
In many a varied chant as well,
In forms of aphorism divine,
With perfect logic and accent.

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥६॥

महाभूत ऽहंकार पुनि बुद्धि और अव्यक्त ।
पञ्च विषय इन्द्रियन के दश इन्द्रिय इक चित्त ॥ ६ ॥

6. The Elements and Egoism,
The Reason and Unmanifest,
The Senses ten and one in all,
And fivefold Objects of the Sense;

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥७॥

इच्छा धीरज चेतना सुख दुख अरु संघात ।
द्वेष सहित संक्षेपतें क्षेत्रविकार कहात ॥ ७ ॥

7. Desire, Aversion, Pleasure, Pain,
Embodied Frame, Intelligence,
And Firmness: these in brief describ'd,
Are Field and its mutations, Parth.

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥८॥

क्षमा अहिंसा सरलता शौच अदम्भ अमान ।
मननिग्रह थिरता तथा गुरुसेवा सन्मान ॥ ८ ॥

8. And modesty and simple faith
And harmlessness, forgiveness, too,
Service of Guru, rectitude
And purity and self-restraint,

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥९॥

इन्द्रियार्थ वैराग्य पुनि संतत अनहंकार।
जन्म जरा रुज मृत्यु के बहु विधि दुःख बिचार ॥ ९ ॥

9. Dispassion for objects of sense,
Absence of egoism, insight
Into the pains and ills of birth,
Of death and age and sickness, too;

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥१०॥

अहंभाव आसक्ति नहिं पुत्रादिक में जाइ।
सदा रहै समचित्तता इष्ट-अनिष्टहु पाइ ॥ १० ॥

10. Detachment and absence of love
For son or wife or home or kin,
And constant balance of the mind
In cherish'd and uncherish'd things;

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥११॥

छाँड़ि अन्य की लगन कों अटल भक्ति मो पाहिं।
सेवन करत इकंत कौ रमत न बहु जन माहिं ॥ ११ ॥

11. Unflinching faith in Me thro' Yog,
And disregard for earthly things,
Resort to a sequester'd place,
Absence of wish for company,

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥१२॥

आत्मज्ञान दृढ़ता सदा तत्त्वज्ञान विच दृष्टि ।
ज्ञान होत इनतें, अलग अज्ञानहि की सृष्टि ॥ १२ ॥

12. Fixture in knowledge of the Self,
Direct perception of the truth,
All this I Wisdom take to be,
All else is ignorance, indeed.

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१३॥

कहहुँ जो जानन जोग है और मुक्तिदातार ।
कहत बनै सदसत न सो ब्रह्मअनादि अपार ॥ १३ ॥

13. And let me now declare to thee
That which thou oughtst to know in full,
Which knowledge, life immortal gives,
And deals with the Supreme Essence.

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१४॥

जाके हैं सब ओर ही हाथ पांव मुख कान ।
मस्तक नेत्र अनन्त, जो सब में व्याप्त महान ॥ १४ ॥

14. He ev'rywhere hath hands and feet,
So also faces, eyes, and heads,
And He hath ears on ev'ry side,
Encircling all that lives and breathes.

सर्वेंद्रियगुणाभासं सर्वेंद्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१५॥

सर्वेन्द्रियभासक सदा यद्यपि इन्द्रियहीन ।
पृथक रहत सबकों धरत निर्गुण गुणनिचलीन ॥ १५ ॥

15. Shining within all gates of sense,
Yet free from shackles of the same,
Detach'd from all, yet main support,
Enjoying all, yet unattach'd;

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् ॥१६॥

भीतर बाहर सबनके चरहु अचर है जोइ ।
सूक्ष्मरूप अज्ञेय पुनि दूर निकट हू सोइ ॥ १६ ॥

16. Without all beings and within,
Immovable and movable,
By reason of His subtlety,
He is at hand and yet distant.

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च यज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१७॥

भूतन माहि बट्यौ न सो बट्यौ समान लखात ।
भूतन कौ स्रष्टा वही पालक घालक तात ! ॥ १७ ॥

17. Though undivided yet He lives
As distributed mid all things,
He should be known as Prop of all,
Creator and Destroyer, hence.

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥१८॥

वहि जोतिनकी जोति है तमतें परै कहाइ।
ज्ञान ज्ञेय अरु गम्य है सब के हृदय फुराइ॥ १८॥

18. He is the Light of Lights, forsooth,
Beyond all darkness said to be,
Knowledge, its object, all in one,
And seated in the hearts of all.

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१९॥

ज्ञान ज्ञेय अरु क्षेत्र हू तोकों दिये बताय।
जिनहि जानि मेरौ भगत मौ बिच जात समाय॥ १९॥

19. The Field, its knowledge, and its path,
Have I in brief described to Thee,
My devotee who knows this all
Enters My being, rest assured.

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥२०॥

प्रकृति पुरुष इन दोउन को सदा अनादिहि मान।
गुण बिकार कों प्रकृतितें भयौ पार्थ! पहिचान॥ २०॥

20. Now know that Matter and the Soul
Are both without commencement, Parth,
Know also thou that qualities
Are all alike of matter born.

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२१॥

कर्त्ता कारण कार्य में प्रकृतिं हेतु कहिजाइ ।
सुखदुखके भोगनविषै हेतु पुरुष कहलाइ ॥ २१ ॥

21. Matter is call'd the base of all,
The source of causes and effects,
While Spirit is condition prime
Of sensing joy and pain of things.

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२२॥

भोगत प्रकृतिस्थित पुरुष प्रकृतिजन्य गुणग्राम ।
ताही कारण लहत है जन्म असत सत ठाम ॥ २२ ॥

22. Coupled with matter, human soul
Useth its diverse qualities;
Attachment to these qualities
Breeds good and evil births for man.

उपद्रष्टाऽनुमंता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥२३॥

द्रष्टा अनुमन्ता विभू भर्त्ता भोक्ता जोइ ।
परमात्मा जाकों कहत फुरै देहविच सोइ ॥ २३ ॥

23. And Permitter and Looker-on,
Supporter and Enjoyer, too,
The Lord Supreme, the Self Supreme,
Thus is the Soul embodied known.

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२४॥

प्रकृति पुरुष गुणसहित जो ऐसें जानै कोइ।
सब विधि हू वर्तत भयौ फिर नहिं जन्मत सोइ ॥ २४ ॥

24. Whoso thus comprehends the Soul,
And Matter with its qualities,
He never shall be born again,
Whatever might his conduct be.

ध्यानेनात्मनि पश्यंति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२५॥

कोउ मन में आतम लखैं आतम द्वारा बुद्ध।
सांख्ययोग अरु कर्म तें लखते अन्य प्रबुद्ध ॥ २५ ॥

25. Some do by meditation see,
And in the body soul perceive;
Others find it by Sankhya-yog,
And others by the Action-path.

अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥२६॥

जो नहिं जानत युक्ति यहि औरन तें सुनि ध्याहिं।
श्रद्धातें उपदेश गहि मृत्यु पार है जाहिं ॥ २६ ॥

26. While others ignorant of this,
Hearing from others, worship Him;
And thus they cross beyond death-realm
Adhering to what they have heard.

यावत्संजायते किंचित्सत्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२७॥

भरत श्रेष्ठ ! चर अचर जो जन्मत सत्व लखात ।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संजोगहि तें जात ॥ २७ ॥

27. Whatever creatures are on earth,
Mobile or immobile, know thou,
They are of union born, Bharat !
Of Matter with the Soul Supreme.

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठंतं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यंतं यः पश्यति स पश्यति ॥२८॥

सब भूतन बिच सम रहै परमेश्वर भगवान ।
नशै न अन्य विनाश बिच यहि है सत्यज्ञान ॥ २८ ॥

28. Seated in all the things that be,
This Lord Supreme, Essence of all,
Unperishing mid perishing,
Who seeth thus, he seeth all.

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परांगतिम्॥२९॥

लखै जो व्यापक ईशकों सबथलमें समभाव ।
हनै न आतम आतमतें तबहिं परमगति पाव ॥ २९ ॥

29. Seeing, indeed, that ev'rywhere
The Lord Supreme in all things dwells,
He doth not self destroy, O Parth !
And thus he treads the Highest Path.

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥३०॥

प्रकृति सोंहि इह कर्म सब किये जात मतिमान !
आत्म अकर्त्ता है सदा, यहि सिद्धांत महान ॥ ३० ॥

30. And he who sees on ev'ry side
That action's done by matter's force,
Deeming his self at perfect rest,
He seeth truly, Pritha's son !

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३१॥

न्यारे भूतन कों जबहि ब्रह्मस्थित लखि जोइ ।
लखै तैस विस्तार भव लहै ब्रह्म तब सोइ ॥ ३१ ॥

31. And when he doth perceive that here
All beings have their roots in One,
Branching in directions all,
Then he doth reach the Goal Supreme.

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥३२॥

यहि अव्यय परमात्मपद अगुण अनादिहु जोइ ।
तन में रहि कुन्तीतनय ! करै न फँसिहै सोइ ॥ ३२ ॥

32. Without a base or qualities,
Th' imperishable Self, Supreme,
Though seated in the human frame,
Works not, nor is he influenced.

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३३॥

सूक्ष्मता तें नभ यथा सब थल रहि न फँसाइ।
त्यों परमात्मा सर्वथित फँसत देह बिच नाँइ ॥ ३३ ॥

33. As ether is affected not
By reason of its subtlety,
So seated in the human frame,
The self is not affected, too.

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३४॥

जैसे सूर्य अकेल ही सबजग करत उजास।
तैसहि पारथ ! देहकों देही करत प्रकास ॥ ३४ ॥

34. As single Sun illumines earth,
So also does the Lord of Field,
Illuminating Field entire,
Bear this in mind, O Bharat's son !

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥३५॥

भेद क्षेत्र क्षेत्रज्ञ को ऐसें जानै जोइ।
भूतप्रकृतिविस्तार हू लहत परमपद सोइ ॥ ३५ ॥

34. Those that by Wisdom-eye perceive,
How Field and Knower differ here,
From bonds of matter freed for e'er,
They surely reach Abode Supreme,

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

——::※::——

इति क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ओ३म् तत् सत्

——::※::——

Here Endeth The Thirteenth Discourse
Entitled
THE DISTINCTION BETWEEN MATTER
AND SPIRIT.

——::※::——

अध्याय १४

श्रीभगवानुवाच—

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥

श्रीभगवान ने कहा ।

सब ज्ञाननमें ज्ञान जो परमज्ञान कहलात ।
जाहि जानि मुनि मुक्त भए ताहि कहत हों तात ॥ १ ॥

The Blessed Lord said:—

1. I will again proclaim to thee
Of entire Wisdom's prime essence,
Which, having known, all sages have
Attain'd to perfect state beyond.

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥२॥

लहि आश्रय जा ज्ञान को मम सधर्मता पाइ ।
सृष्टिकाल जन्मत नहीं क्षय में पीडित नाइ ॥ २ ॥

2. Taking refuge in that, O Parth,
Their lives attuned to Mine alone,
They are no longer born on earth
Nor are they by the Doom disturbed.

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

महद्ब्रह्म निज योनिमें गर्भहि धारों जोइ ।
सम्भव सब प्राणीन कौ भारत ! तातें होइ ॥ ३ ॥

3. My womb is the Eternal great,
I place therein the seed of all,
Thence is the birth of all the things
That live and move, O Bharat's son !

सर्वयोनिषु कौंतेय मूर्तयः संभवंति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

कुन्तीसुत ! सब योनि में मूरति उपजैं जोइ ।
महत योनि तिनकी गनौ पिता बीजप्रद मोइ ॥ ४ ॥

4. In whatsoever wombs, forsooth,
They are produced, O Kunti's son !
The great Eternal is their womb,
And I their propagating Norm.

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

सत रज तम ये गुण सदा प्रकृतिहि तें उपजाहिं ।
तनधारी अविनाशि कों बाँधत हैं तन माहिं ॥ ५ ॥

5. Sattva, Rajas, and Tamas, too,
Are qualities of Matter born,
They bind the Ego in the frame,
The Deathless Self who dwells within.

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥६॥

निर्मलता तें सत तहाँ अरुज प्रकाशक आहि ।
अनघ ! ज्ञान सुखसङ्गतें बाँधत है सो ताहि ॥ ६ ॥

6. Of these, the Sattvic quality,
All pure and bright and full of health,
Bindeth a man to Bliss alone,
To perfect Wisdom, Sinless One!

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥७॥

रागरूप रज कों गिनौ तृष्णा सों उपजाइ ।
बाँधै देहिन पार्थ ! यहि कर्मसंग में लाइ ॥ ७ ॥

7. Rajas, the passion-born, know thou,
Creates a thirst for life, indeed,
And bindeth dweller in the frame
By bonds of action to this plane.

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥

मोहै सब प्राणिन सदा अज्ञानज तम जोइ ।
आलस नींद प्रमादतें बाँधत भारत सोइ ॥ ८ ॥

8. Tamas, which springs from ignorance,
Deludes the dweller in the frame,
And bindeth him by heedlessness,
In bonds of sloth and indolence.

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥९॥

सत सुखमें रज कर्ममें तम प्रमादमें पार्थ !
ढकि प्राणिन के ज्ञानकों फाँसत जान यथार्थ ॥ ९ ॥

9. Sattva is e'er attach'd to bliss,
Rajas to action, Bharat's son !
While Tamas, on the other hand,
To heedlessness and ignorance.

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥

प्रबल सत्त्व कहुँ होत है कबहुक रज की जीति ।
कहुँ कहुँ तम बाढ़त अहै यहि ही इनकी रीति ॥ १० ॥

10. Sometimes the Sattvic doth prevail
O'er the two remaining moods,
Sometimes Rajas predominates,
Sometimes Tamas, O Kunti's son!

सर्वद्वारेष देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥११॥

या तनके सबद्वार बिच जब प्रकाश हुइ जाइ ।
ज्ञान बढ़ै तब जानिये चमक्यौ सतगुन आइ ॥ ११ ॥

11. When Wisdom-light is seen to shine
Through all the portals of the frame,
Then be it known, O Pritha's son,
That Sattva is predominant!

लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

हे भारत ! रजगुण बढ़ै प्रकट होत हैं याह।
लोभ कर्म आरम्भ अरु प्रबल अचैनी चाह ॥ १२ ॥

12. Greed, enterprise and endeavour,
Desire of gain and restlessness,
These are of Rajas born, forsooth,
Know this, O best of Bharat's sons !

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥१३॥

कुरुनन्दन ! तम के बढ़ै उपजत हैं पुनि जाइ।
अप्रकाश रुचिहीनता मोह प्रमादहु सोइ ॥ १३ ॥

13. Absence of light and stagnant mood,
Delusion, too, and heedlessness,
All these are of the Tamas born,
Listen, O joy of Kuru's line !

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४॥

सतगुन के बाढ़न समैं जो मनुष्य मरजाइ।
उत्तम ज्ञानिन कौ अमल लोक पार्थ ! सो पाइ ॥ १४ ॥

14. If when th' embodied soul goes forth,
The mood of Sattvagun prevails,
Then he attains to spotless realms
Of the Great Sages, Kunti's son !

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

रजगुनमें लहि मृत्यु कों कर्मिन में ह्वै जाइ ।
तथा तमोगुनमें मरे मूढ़ योनि जन पाइ ॥ १५ ॥

15. If he departs mid Rajas mood,
He is among the heroes born,
But if he leaves in Tamas state,
In senseless wombs he falls, again.

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

पुण्य कर्मकौ फल सदा सात्त्विक निर्मल जान ।
रजकौ फल दुख होत है तमकौ फल अज्ञान ॥ १६ ॥

16. 'Tis said the fruit of Sattvic mood
Is harmony and spotlessness;
While pain the fruit of Rajas is,
And Tamas sheer unwisdom brings.

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

ज्ञान होत है सत्त्वतें रजतें लोभ महान ।
तमतें होत प्रमाद अरु मोह तथा अज्ञान ॥ १७ ॥

17. From Sattvic mood doth Wisdom come,
As greed from Rajas doth arise,
While heedlessness, delusion, too,
And ignorance are Tamas-born.

ऊर्ध्वं गच्छंति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छंति तामसाः ॥१८॥

ऊपरि चढ़ि है सत गुनी ठहरत राजस बीच ।
तमोवृत्तिवश तामसी नीचें गिरिहैं नीच ॥ १८ ॥

18. They rise upwards who dwell in *Sat*,
The Ràjas stay in middle sphere,
The Tàmas downwards go, forsooth,
Caught in the trend of evil mood.

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

गुण बिनु करता और नहिं लखै विवेकी जोइ ।
गुण तें बढ़ आतम लखै लहै भाव मम सोइ ॥ १९ ॥

19. And when the Seer no agent finds
Other than triple quality,
And knoweth that which lies beyond,
Then doth he reach My state divine.

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

देहज इन त्रय गुणनकों देही जो लँघि जाइ ।
जन्म जरा दुख मृत्यु सों मुक्त मुक्ति कों पाइ ॥ २० ॥

20. But when the dweller in the frame
Transcends this trple mood, O Parth !
Exempt from birth and age and death,
Cup of immortal life he drinks.

अर्जुन उवाच—

कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

अर्जुन ने कहा ।

कौन चिन्ह प्रभु ताहि के गुणातीत जो होइ ।
ताकौ का आचार है गुणनि तरै किमि सोइ ॥ २१ ॥

Arjuna said:—

21. What are the marks of him, O Lord,
Who hath these qualites cross'd o'er ?
How acteth he, how doth he go
Beyond these triple diverse bonds ?

श्रीभगवानुवाच—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥२२॥

श्रीभगवान ने कहा ।

पार्थ ! प्रकाश प्रवृत्ति अरु मोह होइ जो आइ ।
तिनके त्याग प्रवृत्तिमें द्वेष न इच्छा जाइ ॥ २२ ॥

The Blessed Lord said:—

22. Who hateth not, O Pandu's son,
Delusion, light or energy;
Who craveth not for them at all,
Whether they operate or not.

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तंत इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ॥२३॥

उदासीन सम गुणनि तें चलित न ह्वै आसीन।
अटल रहै यहि समुझिकै गुण ही वर्तत तीन ॥ २३ ॥

23. He who remains as neutral here,
Unshaken by these qualities,
Who seeing that the moods revolve,
Standeth apart and unconcern'd;

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥२४॥

ठिकुरी पत्थर हेम सम प्रिय अप्रिय सुख पीर।
निन्दा अस्तुति जाइ सम ऐसो जो मतिधीर ॥ २४ ॥

24. Balanced in pleasure and in pain,
To whom clod, stone and gold are one,
The same to loved one and unloved,
The same in praise and censure, too;

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीत स उच्यते ॥२५॥

मान तथा अपमान सम हितु रिपु पक्ष समान।
त्यागी सर्वारम्भ जो गुणातीत तेहि जान ॥ २५ ॥

25. The same in honour and disgrace,
The same to friend and enemy,
To fruit of action unattach'd,
He is then said to cross the moods.

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

अटल भक्तिके योगतें जो मम सेवा धार ।
ब्रह्मभाव कों पाइ है और गुणन कौ पार ॥ २६ ॥

26. And he who serveth Me alone
With constant love and heart devout,
Crossing beyond the qualities,
Is fit Eternal to become.

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥२७॥

अमृत सनातन धर्म कौ तथा ब्रह्म कौ धाम ।
अरु अव्यय एकान्त सुख लखु मोही कों ठाम ॥ २७ ॥

27. So know Me thou as chief abode
Of life eternal, deathless state,
Of Righteousness and Bliss supreme
Which continue for evermore.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

——::❀::——

इति गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
ओ३म् तत् सत्

——::❀::——

Here Endeth The Fourteenth Discourse
Entitled
THE DIVISION OF THE
THREE QUALITIES.

अध्याय १५

श्रीभगवानुवाच—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥

भगवान ने कहा ।

जड़ ऊपर शाखा तले वेद पत्र अति शुद्ध ।
ऐसें नित अश्वत्थ कों जो जानै सो बुद्ध ॥ १ ॥

The Blessed Lord said:—

1. With roots above, and shoots below,
Eternal is Ashvattha call'd,
The leaves of it are hymns, forsooth,
Who knoweth this is versed in Ved.

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

शाखा इसी अश्वत्थ की सत्त्वादि गुणतें बढ़ रहीं ।
शब्दादि रूपी विषयतें फूटी प्रबालें हैं कहीं ॥
यहि भांति मूलैं लटकि नीचै फैलती हैं सर्वदा ।
कर्म बन्धन में बँधी इस लोक में बढ़तीं सदा ॥ २ ॥

2. Its branches shoot out, up and down,
Nourish'd are they by qualities,
Objects of sense its blossoms are,
Its roots are bonds of action, too.

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥

जाकौ न रूप दिखात है नहिं आदि अन्तहु लखि परै ।
अश्वत्थ जो दृढ़मूल तास असंगसों खण्डन करै ॥ ३ ॥

3. By none the knowledge of its form,
Its source, its end, its rooting place,
May be perceiv'd, O Pritha's son!
Detachment's weapon cuts it down.

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्त्तंति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

फिर वही चहिये पद खोजना ।
न जिससे पड़ता फिर लौटना ॥
शरण तू गहिले भगवानकी ।
विरचना जिन कीन्ह जहान की ॥४॥

4. That path beyond then may be sought
From whence is no return to earth,
"To Primal Man I go indeed,
Who is the Fountain-head of all."

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

जो मान मोह निकासिकै अरु संगदोषनि जीतिकै ।
थिर नित्य आतम बिच रहै अरु कामना सब छांड़िकै ॥
सो दुःख नामक द्वंद्व तें अरु मोह हू तें मुक्त ह्वै ।
हे वीरवर शाश्वत परमपद शान्ति अक्षय को लहै ॥५॥

5. Freedom from pride and error, too,
Detachment, dwelling in the Self,
Desire at rest, freedom from pairs,
All these secure immortal life.

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

सूर्य चन्द्र अरु अग्नि सों जो न प्रकाशित होइ ।
जहाँ पहुँचि नहिं लौटि है धाम परम मम सोइ ॥६॥

6. Neither the sun there spreads his light
Nor shines the moon, nor burneth fire,
Having gone thither none returns,
That is Supreme Abode of Mine.

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

मोर सनातन अंश ही जीवलोक बिच जोइ।
प्रकृतिस्थित इन्द्रियनयुत मन कों खैंचत सोइ ॥७॥

7. A portion of My Self divine,
Transform'd into immortal spark,
Draweth round it the senses five
With mind as sixth in matter bound.

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानिवाशयात् ॥ ८ ॥

यथा पवन पुष्पादि तें गंध संग लै जाइ।
तथा जीव इन्द्रियन कों नूतन तन बिच लाइ ॥८॥

8. And when the Lord acquireth frame,
And when he doth abandon it,
He seizeth these, when going forth,
As wind takes fragrance from the bloom.

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

आँख कान रसना त्वचा नासा पर अधिकार।
दृढ़ जमाइ भोगै सदा मनसों भोग अपार ॥९॥

9. Enshrin'd, O Parth, in ear and eye,
In sense of touch, of taste and smell,
And in the mind residing, too,
He doth enjoy objects of sense.

उत्क्रामंतं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यंति पश्यंति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥

देहस्थित या जीवकों राखत तजत शरीर ।
अज्ञानी देखत नहीं देखत हैं मतिधीर ॥१०॥

10. Deluded ones do not perceive
When he departeth, when he stays,
Or swayed by qualities, enjoys,
The wisdom-eyed perceive alone.

यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतंतोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ॥११॥

जतन करत योगी लखैं आपुहि में थिति पाइ ।
विषयासक्त अचेत नर मूढ़ लखहिं नहिं ताइ ॥११॥

11. Yogis perceive Him, struggling hard,
Establish'd in the Self, forsooth,
While those whose Reason has not dawn'd,
Tho'trying hard, perceive Him not.

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१२॥

सूरज में जो तेज है जगत प्रकाशत जोइ ।
अरु चन्दा अरु अगिन में सब मेरो ही सोइ ॥१२॥

12. The light that issues from the sun,
Which brightens up this world of men,
That which is in the Moon and Fire,
That splendour, know thou, comes from Me.

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥१३॥

बलसों भूतन कों धरों करिके भूमि प्रवेश ।
अरु पोषत सब ओषधिन रसमय ह्वै राकेश ॥१३॥

13. Diving beneath the soil, I give
Support to ev'ry living thing,
And having sapful moon become,
I nourish all the plants on earth.

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

वैश्वानर बनि रहत हों प्राणिन मध्य समाइ ।
अन्न पचावत चार विधि प्रान अपान मिलाइ ॥१४॥

14. Transform'd into the Fire of Life,
I enter frames of living things,
And joining with the vital airs,
I digest foods of diff'rent kinds.

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

हृदयमें सबके मैं बसत हों
मोतेंहि स्मृति ज्ञान विचार हैं ।
सब श्रुतिन सों मैं जानन जोग हों
रचयिता श्रुति कौ अरु जानन हार मैं ॥१५॥

15. I'm seated in the hearts of all,
From Me all wisdom doth proceed,
That which is known thro' Ved am I,
Vedanta's author, too, I am.

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥

क्षर अरु अक्षर दो पुरुष पारथ जान इहस्थ ।
क्षर तौ सारे भूत हैं अक्षर है कूटस्थ ॥१६॥

16. There are two principles of life,
The changing and the changeless One,
All beings undergo a change,
The changeless One's Eternal call'd;

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

अन्य जो उत्तम पुरुष है परमात्मा कहलात ।
तीनलोकव्यापक अमर पालक पोषक तात ! ॥१७॥

17. The Highest Energy, O Parth !
Is diff'rent from the two above,
Pervading triple Universe,
The deathless Lord supports this all.

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

उत्तमता में श्रेष्ठतर अहों क्षरन्तें तात !
लोक वेद में ताहितें पुरुषोत्तम कहलात ॥१८॥

18. Since I excel that which decays,
As also that which decays not,
I am proclaim'd the Lord Supreme,
In Veda and the Universe.

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

पुरुषोत्तम मोइ जानिकै असंमूढ़ ह्वै जोइ ।
भारत ! मोइ सब भाव तें भजै सर्वविद सोइ ॥१९॥

19. Whoso, delusion-free, perceives
And knoweth Me as Lord Supreme;
He, knowing all, doth worship Me,
With his whole being, Bharat's son !

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥२०

परम गोप्य शिक्षा अटल जो मैं दई सुनाइ ।
जाकों जो धारण करै सफल यत्न ह्वै जाइ ॥२०॥

20. O Guileless One, I have revealed
This secret teaching for thy sake,
This known, one gets illumed at once,
And hath his task accomplish'd soon.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तम-योगोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

——::❀::——

इति पुरुषोत्तमयोगोनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

ओ३म् तत् सत्

Here Endeth The Fifteenth Discourse
Entitled
ATTAINMENT OF THE
SUPREME SPIRIT.

अध्याय १६

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥

श्रीभगवान ने कहा।

अभय शुद्धि अरु सरलता ज्ञानयोगविच थान।
दान तपस्या यज्ञ दम नितस्वाध्याय विधान ॥ १ ॥

The Blessed Lord said:—

1. Absence of fear and cleanliness,
And steadfastness in quest of truth,
Gift, self-restraint and sacrifice,
Learning, penance and candidness,

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥

शान्ति अहिंसा सत्यता क्रोधपिशुनताहीन।
त्याग दया लज्जा क्षमा लोभचपलताछीन ॥ २ ॥

2. Truth, harmlessness, absence of wrath,
Detachment, peace and purity,
Simplicity, compassion, calm,
Freedom from greed and modesty,

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

तेज शौच क्षमता धृती द्रोहाभाव अमान ।
दैवीसम्पतियुक्तके गुण भारत ये जान ॥ ३ ॥

3. Vigour, forgiveness, fortitude,
Absence of envy and of pride,
Coupled with honesty of life,
Are call'd the properties divine.

दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

दम्भ दर्प अभिमानिता क्रोध क्रौर्य अज्ञान ।
असुरसंपदायुत मनुज ताके अवगुण जान ॥ ४ ॥

4. Hypocrisy and arrogance,
Conceit and wrath and folly, too,
These are his who is born, O Parth !
Endow'd with hellish qualities.

दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पांडव ॥ ५ ॥

सुरसंपति है मुक्ति लगि बन्धन आसुरि जान ।
शोच न कर तू पाण्डुसुत ! सुरसंपति प्रकटान ॥ ५ ॥

5. The gifts divine set free the soul,
As gifts demoniac bind it fast;
Grieve not, O Pandu's son, thou art
Endow'd with properties divine.

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

पार्थ! लोक में सृष्टि हैं दैवासुर ये दोइ।
दैवी गुण कहि आसुरी और सुनाऊं तोइ ॥ ६ ॥

6. Twofold is world's creation here,
Divine and hellish, justly nam'd,
Divine hath been describ'd at length,
Now listen, Parth, what hellish means.

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

प्रवृति निवृति को असुरजन पारथ! जानत नाहिं।
शौच सत्य आचार दम होत न तिनके माहिं ॥ ७ ॥

7. Demoniac people never know
Right action or right abstinence,
Nor purity nor decency,
Nor truth is ever found in them.

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

जग असत्य आधारबिनु कहहिं अनीश्वर सोइ।
कामहेतु अरु कछु नहीं संयोगहि तें होइ ॥ ८ ॥

8. The world is truthless, without base,
Without a God, they say, O Parth!
By forces contrary produced,
And caused by lust, and nothing else.

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ६ ॥

अल्पबुद्धि अज्ञान जन ऐसी मति ठहिराइ ।
जगके वैरी नाशकों होंइ कुकर्मी आइ ॥ ९ ॥

9. Holding this view, these ruin'd souls,
Bereft of reason, terrible,
Come forth as deadly enemies,
For the destruction of the world.

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ॥
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तंतेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

पड़े काम दुष्पूर बिच दम्भमानमद्लीन ।
गहें असतग्रह मोहतें वर्तत व्रतहु मलीन ॥ १० ॥

10. By quenchless longing goaded on,
Possess'd with vanity and pride,
Deluded, holding evil thoughts,
They strive with motives all impure.

चिंतामपरिमेयां च प्रलयांतामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

चिन्तामग्न अपार है मरणकाल पर्यन्त ।
काम भोग ही परमसुख यहि निश्चय अत्यन्त ॥ ११ ॥

11. Engross'd with anxious, boundless plans,
Engaged in thoughts whose end is death,
Sense-pleasure is their highest goal,
They feel quite sure that that is all.

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहंते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

आशापाशनितें बँधे काम क्रोध निजस्वार्थ ।
धनसञ्चय अन्यायतें करत कामभोगार्थ ॥ १२ ॥

12. In bondage held by ties of hope,
Subject to lust and anger, too,
They strive by lawless means to gain
Large hoards of wealth for pleasure' sake.

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

आज मिली यहि संपदा काल्ह वहू मिल जाइ ।
यह धन मेरे हाथ है वह धन हू मोइ पाइ ॥ १३ ॥

13. "This by me hath been won to-day,
That purpose I shall gain anon,
This wealth is mine without a doubt,
And also that will come to me.

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥

आज हन्यौ यह शत्रु मैं हनिहों कल जो आन ।
मैं भोगी ईश्वर अहों सिद्ध सुखी बलवान ॥ १४ ॥

14. "This enemy of mine is slain,
And others also shall I slay,
I am the Lord, Enjoyer, too,
Perfect am I, and hale and strong.

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥१५॥

मो समान कोउ और नहिं मैं कुलीन धनवान।
यज्ञ दान अरु मोद सब करिहौं कहत अजान॥ १५॥

15. I'm passing rich, potent, well-born,
Who else is here like unto me,
I'll sacrifice, give alms, rejoice,"
Deluded thus, they fall again.

अनेकचित्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्तः कामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ॥ १६॥

बहु विचारतें भ्रान्तचित फँसे मोहके जाल।
कामभोगरत अशुचि नर नरक परैं तत्काल॥ १६॥

16. Bewilder'd by their numerous thoughts,
Enmesh'd in dire delusion's web,
Addicted to sense-pleasures gross,
They go down into hells unclean.

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजंते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम्॥ १७॥

अभिमानी अरु निठुर अति धनमदमान समेत।
अविधि दम्भतें नामकों यज्ञहु करैं अचेत॥ १७॥

17. Self-glorifying, obstinate,
Fill'd with the pride of wealth immense,
Lip-sacrifices they perform
For show, opposed to Holy Writ.

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
ममात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

अहंकार बल दर्प अरु काम क्रोध वश होइ ।
निज पर तन थित मोहिकों निन्दैं द्वेषैं सोइ ॥ १८ ॥

18. Swollen with pow'r and insolence,
And egoism and lust and wrath,
These wicked ones hate Me, O Parth,
In other bodies and their own.

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥

ऐसे द्वेषी क्रूर अरु अशुभ नराधम आहिं ।
फैंकहुँ आसुरि योनि तिन मैं सदैव जगमाहिं ॥ १९ ॥

19. These haters, evil-minded ones,
Compassionless, and vilest souls,
I ever throw down into wombs
Of demons, hellish and impure.

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौंतेय ततो यांत्यधमां गतिम् ॥२०॥

जन्म जन्म में मूढ़ ये योनि आसुरी पाइ ।
मेरौ पद पाये बिना लहैं अधम गति जाइ ॥ २० ॥

20. Cast into these demoniac wombs,
Deluded sore from birth to birth,
Attaining not to Me, they go,
To lowest depths, O Kunti's son !

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

द्वार नरक के तीन ही आतम नाशक जान ।
काम क्रोध अरु लोभ पुनि इनहिं त्याज्य ही मान ॥ २१ ॥

21. Triple's the gate of hell, indeed,
Destructive of the Self, forsooth,
Lust, wrath, and greed of gain, the third,
Therefore let man these three renounce.

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

इन तीनों तमद्वार तें बचै मनुज जो कोइ ।
आत्मश्रेय निश्चय करै तासु परमगति होइ ॥ २२ ॥

22. A man lib'rated from these gates
Of darkness, know thou, Kunti's son !
Accomplisheth his own welfare,
And sure attains to highest realm.

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥२३॥

जो तजिकै विधि शास्त्र की करै कर्म मन मानि ।
सो नहिं पावत सिद्धि सुख होत परमगति हानि ॥ २३ ॥

23. But he, who having cast aside
The ordinance of Holy Writ,
Follows the promptings of desire,
Attaineth not perfection e'er.

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्मकर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

कार्याकार्य विचारमें तोकों शास्त्र प्रमान।
कर्म उचित यातें करन गनि शास्त्रोक्त विधान ॥ २४ ॥

24. Therefore let Scripture be thy guide,
In knowing right from wrong full well,
Thus knowing what Shastras ordain,
Thou oughtst to do thy duty here.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुर संपद्वि-भागयोगोनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

——::❀::——

इति दैवासुरसंपद्विभागयोगोनाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥
ओ३म् तत् सत्

——::❀::——

Here Endeth The Sixteenth Discourse
Entitled
THE DIVISION BETWEEN THE
DIVINE AND THE DEMONIAC QUALITIES.

——::❀::——

अध्याय १७

अर्जुन उवाच—

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥१॥

अर्जुन ने कहा ।

श्रद्धायुत तजि शास्त्रविधि करहिं यजन हरि जौन ।
सात्त्विक राजस तामसी तिनकी श्रद्धा कौन ॥१॥

Arjuna said.—

1. Those that discarding Scripture-law,
But full of faith, make sacrifice,
What is their state, Krishna, declare,
Pure, *passionate*, or *dark* or what ?

श्रीभगवानुवाच—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥२

श्रीभगवान ने कहा ।

श्रद्धा प्राणिन की त्रिविध सो स्वभावतें होइ ।
सात्त्विक राजस तामसी कुंतीसुत सुन सोइ ॥ २ ॥

The Blessed Lord said:—

2. Three-fold by Nature is ordain'd
The inborn faith of humankind,
Pure, *passionate*, and *dark*, forsooth,
Hear thou of these, O Kunti's son !

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

भारत श्रद्धा सबन की होत सत्त्व अनुसार ।
श्रद्धामय यह पुरुष है सो जस श्रद्धा धार ॥३॥

3. The faith of each is shaped to his
Own inward nature, Arjuna,
The man consisteth of his faith,
As is his faith, so is he, too.

यजंते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणाश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥४॥

यजन सात्त्विकी करत हैं देवन कौ सुनु मीत ।
यक्ष निशाचर राजसी तामस भूत पलीत ॥ ४ ॥

4. Pure souls worship the Shining Ones,
The passionate, the gnomes and elves,
The dark folk worship ghosts and jinns,
And multitudes of goblin hosts.

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः ॥
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥

शास्त्राज्ञा विपरीत जो करत पार्थ तप घोर ।
जुटे दम्भ अरु मानमें काम रागके जोर ॥ ५ ॥

5. The men who penances perform,
Not sanction'd by the Scripture-law,
By lust and passion goaded on,
Impell'd by force of their desire:

कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवांतःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

भूतग्राम देहस्थ कों तन अन्तर्गत मोइ ।
जो खैंचत हैं मूढ़जन असुर कहावत सोइ ॥ ६ ॥

6. Tormenting all the elements
That go to constitute the frame,
And also Me, seated therein,
Know thou these dull demoniac souls.

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

सब कौं तीन प्रकार कौ भोजन रुचिकर होइ ।
यज्ञ तपस्या दान के सुनहु भेद अब जोइ ॥ ७ ॥

7. And also food which each one likes
Is three-fold in its nature, Parth,
Likewise penance, worship and gift,
Now hear the diff'rent kinds of these.

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याःस्निग्धाःस्थिरा हृद्या आहाराःसात्त्विकप्रियाः

आयु सत्त्व बल अरुज सुख प्रीति बढ़ावनहार ।
सरस हृद्य थिर चीकनौ सात्त्विकप्रिय आहार ॥ ८ ॥

8. The foods that energy augment,
Vigour and health and cheerfulness,
Delicious, bland, substantial are,
These to the pure are ever dear.

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ६ ॥

तीक्ष्ण रूख बहुउष्ण कटु अम्ल विदाही क्षार ।
रोग शोक अरु दुःखप्रद राजसप्रिय आहार ॥ ९ ॥

9. The foods that are bitter and sour,
Saline, pungent, dry, overhot,
Producing pain, sickness and grief,
Of these the passionate are fond.

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

यातयाम दुर्गंधयुत नीरस बास्यौ जोइ ।
और अशुचि उच्छिष्ट जो है तामसप्रिय सोइ ॥ १० ॥

10. That which is stale, putrid, corrupt,
Leavings of meals, polluted food,
Unclean and full of stench and rot,
This by the dark is liked the best.

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

कार्यकर्म मनमें समुझि फलइच्छाबिनु जोइ ।
विधिपूर्वक जो यज्ञ है सात्त्विक जानौ सोइ ॥ ११ ॥

11. The Sacrifice which men offer,
Without desire for fruit at all,
As Shastra ordains, as Duty calls,
Such sacrifice is pure, indeed.

अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥

फलइच्छा सों जो कियौ यज्ञ दम्भलगि जोइ।
भरतर्षभ ! जानौ सदा यज्ञ राजसी सोइ ॥ १२ ॥

12. The Sacrifice offer'd to gain
Some fruit or self-aggrandisement,
O best of Bharatas, know thou,
Such sacrifice is passion-born.

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

बिनामन्त्र बिनुदक्षिणा अन्नबिना विधिहीन।
बिनुश्रद्धाके यज्ञकौं तामस कहत प्रवीन ॥ १३ ॥

13. Improper Sacrifice, bereft
Of food and *mantram*, and of gift,
Empty of faith, or purposeless,
Such sacrifice is call'd the dark.

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

सुर महिसुर गुरु बुध यजन शौच सरलता दान।
ब्रह्मचर्य हिंसातजन शारीरिक तप जान ॥ १४ ॥

14. Homage to gods and preceptors,
To twice-born men and to the wise,
Cleanness and continence and calm,
These Body penances are known.

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

करत नाहिं उद्वेग पुनि सत्य व प्रियहित जोइ ।
वेदपाठ अभ्यासयुत वाणीतप है सोइ ॥ १५ ॥

15. A speech causing no disturbance,
Truthful, pleasant and full of use,
And reading of the sacred books,
This Penance of the Speech is call'd.

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥

मनप्रसाद सौम्यत्व अरु मौन आत्मग्रह होइ ।
निश्छलता व्यवहार में मनतप कहिये सोइ ॥ १६ ॥

16. And mental happiness and calm,
And silent mood and self-control,
Along with inward purity,
This is the Penance of the Mind.

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥१७॥

फलकी इच्छा छाँड़िकै श्रद्धापूर्वक जाइ ।
उत्तम जन करते त्रिविध तप सात्त्विक कहलाइ ॥ १७ ॥

17. This three-fold penance done by man,
With utmost faith and mind intent,
Without desire for fruit at all,
Is said to be all pure, O Parth!

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

आदर पूजा मानहित कियौ दम्भसों जौन।
चञ्चल अस्थिर दर्पयुत रजोगुनी तप तौन ॥ १८ ॥

18. The penance which is practis'd here,
For sake of honour, worship, fame,
Or for the purpose of display,
Such penance is of passion born.

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

कियौ दुराग्रह तें जु तप आत्मदुःख तें जोइ।
वा दूसर की हानि लगि कहिये तामस सोइ ॥ १९ ॥

19. While penance from delusion sprung,
Coupled with torture of the self,
Or with a view to kill someone,
Is said to be of darkness born.

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥२०

अनउपकारीकों दियौ दैन चहिय जो पार्थ।
देश काल अरु पात्र लखि सात्त्विक दान यथार्थ ॥ २० ॥

20. A gift to him who can't return,
Believing that it should be made,
In proper place, at proper time,
To one deserving, pure is named

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥

जो हित प्रत्युपकार के वा पुनि फल कों चाहि।
अथवा जो दुखतें दियौ राजसदान कहाहि ॥ २१ ॥

21. But that which doth expect return,
Or looks for fruit, O Pritha's son!
Or which is grudgingly offer'd,
That gift is surely passion-born.

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

देश काल अरु पात्र बिनु लखै दियौ जो दान।
मानहीन सत्कारबिनु ; ताकों तामस जान ॥ २२ ॥

22. The alms given in unfit place,
At unfit time, to unfit men,
Without respect and with contempt,
That gift is sure of darkness born.

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥२३॥

'ओ३म्' 'तत्' 'सत्' इन तीनकों ब्रह्मनाम पहिचान।
वेद यज्ञ अरु विप्र कौ इनतें सम्भव जान ॥ २३ ॥

23. "Aum Tat Sat" this is said to be
The triple word for Brahm Supreme,
For Brahman, Ved and Sacrifice,
By that were all ordain' d of old.

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तंते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥२४॥

तातें कहिकै "ओ३म्" इति यज्ञ क्रिया तप दान।
वेदज्ञनकी होत है वैदिकक्रिया विधान ॥ २४ ॥

24. Therefore, pronouncing sacred "Aum",
The knowers of th' Eternal Brahm
Begin all acts of sacrifice,
All gifts and penances, as well.

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपः क्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियंते मोक्षकांक्षिभिः ॥२५

"तत्" उच्चारण के बिना यज्ञ दान तप पार्थ।
कबहुँ मुमुक्षू नहिं करत जानौ याहि यथार्थ ॥

25. Likewise, uttering "Tat", without
Aiming at fruit of action done,
Those that desire lib'ration here,
Perform all kinds of Sacrifice.

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

हे अर्जुन! सज्जन सदा 'सत्' कौ करैं प्रयोग।
अरु श्रेयस्कर कार्य्य में "सत्" बोलैं सब लोग ॥ २६ ॥

26. The syllable "Sat" is fitly used
For what is good and pure and true,
Likewise, O Parth, this word is used
To indicate all actions right.

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

यज्ञ तथा तप दान में थिति "सत्" नाम कहाइ ।
अरु त्यहि अर्पित कर्म सब "सत्" नामहिं कों पाइ ॥ २७॥

27. And steadfastness in sacrifice,
Penance and gift are also "Sat";
As action for the sake of Brahm
Is designated by that term.

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नोइह ॥ २८ ॥

यज्ञ दान तप कर्म हू श्रद्धाबिनु जो होइ ।
"असत्" कहावत पार्थ वह नहिं यहँ नहि वहँ सोइ ॥ २८ ॥

28. Whatever faithlessly is done,
Oblation, gift, penance or deed,
"Asat," it should be call'd, O Parth!
It is naught here or after death.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

——::❀::——

इति श्रद्धात्रयबिभागयोगोनाम सप्तदशोऽध्याय ॥ १७ ॥

ओ३म् तत् सत्

Here Endeth The Seventeenth Discourse
Entitled
THE DIVISION OF THE
THREE-FOLD FAITH.

——::❀::——

अध्याय १८

अर्जुन उवाच—

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥१॥

अर्जुन ने कहा ।

केशिनिसूदन ! महाभुज ! हे इन्द्रिन के नाह !
तत्त्व त्याग संन्यास के जानन की मोइ चाह ॥ १ ॥

Arjuna said—

1. I wish to know, O mighty-arm'd,
Renunciation's true essence,
And also of Relinquishment,
All separate, O Lord of Sense !

श्रीभगवानुवाच—

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥२॥

श्री भगवान् ने कहा ।

काम्य कर्मके न्यासकों कविजन कहँ संन्यास ।
त्याग कहत हैं तजत जहँ सकल कर्मफलआस ॥ २ ॥

The Blessed Lord said:—

2. Sages Renunciation call,
Giving up of the heart's desires,
And by Relinquishment they mean,
Renouncing fruit of action done.

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

कर्म त्याज्य है दोषवत् कहैं कोउ मतिमान ।
उचित न त्यागन कहत कोउ कर्म यज्ञ तप दान ॥ ३ ॥

3. As evil, action should be shunn'd,
That's what some thoughtful men opine,
While Sacrifice, Penance and Gift
Should not be shunn'd, say other men;

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥४॥

मम निश्चय जो भरतवर ! त्याग विषय सुनु ताइ ।
पुरुषसिंह ! त्यागहु सदा तीन प्रकार कहाइ ॥ ४ ॥

4. Here listen to what I do hold,
About Relinquishment, O Parth!
For it has been explain'd, O chief!
As three-fold and of diff'rent kinds.

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥५॥

कुन्तीसुत ! नहिं त्याज्य हैं कर्म यज्ञ तप दान ।
इन तीननतें होत हैं शुद्ध सदा बुधिमान ॥ ५ ॥

5. Now sacrifice, Penance and Gift
Should not be shunn'd by any one,
For they are by the wise declared,
As purifying acts for men.

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥६॥

इनहूँकौ करिबौ उचित करि संगतिफल त्याग ।
निश्चित उत्तम पार्थ ! यहि मत मेरो नितजाग ॥ ६ ॥

6. But e'en these actions should be done
Leaving aside desire for fruit,
And free from all attachment, Parth,
This is my certain, firm belief.

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

नियत कर्मकौ त्यागहू उचित नाहिं सुनु तात !
तासु त्याग अज्ञानवश तामस त्याग कहात ॥ ७ ॥

7. Renunciation of those acts
That are prescrib'd is wrong, indeed,
Relinquishment, delusion-sprung,
Is said to be of darkness born.

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥

जो दुखदाई समुझि कै करत कर्मकौ त्याग ।
राजस त्याग कहात सोइ बिना त्यागफलभाग ॥

8. He who relinquisheth an act,
Saying that it is full of pain,
From fear of suff'ring to the frame,
Obtaineth not the fruit thereof.

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विको मतः॥९॥

नित्यकर्मको कार्य गनि फलासङ्ग तजि धीर ।
करै जु ताही त्याग कों सात्त्विक जानौ वीर ! ॥ ९ ॥

9. He who performs an act prsecrib'd,
Saying, "It should be done, of course",
Relinquishing desire for fruit,
Such action is regarded pure.

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

सत्त्वयुक्त मेधावि जो त्यागी संशयहीन ।
अशुभ कर्मसों द्वेष नहिं ताइ न शुभमें लीन ॥ १० ॥

10. The one who thus relinquisheth,
Pure, full of light, and doubtless is,
Hateth not actions unpleasant,
Nor is to pleasant acts attach'd.

नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११॥

तनधारी पै तौ कबहुँ कर्म तज्यो नहिं जाइ ।
जो त्यागत है कर्मफल त्यागी सोइ कहाइ ॥ ११ ॥

11. Nor can embodi'd beings here
Relinquish action as a whole,
He who relinquisheth the fruit,
Is said to be Renouncer true.

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२

इष्ट अनिष्टहु मिश्र पुनि त्रिविध कर्मफल होइ ।
अत्यागी कों होत सोइ त्यागी कों नहिं कोइ ॥ १२ ॥

12. Good, evil, mix'd—threefold is fruit
For non-relinquisher, O Parth!
But for the one that doth renounce,
There is no fruit of action here.

पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

सब कर्मन की सिद्धि लगि सांख्यशास्त्र में जोइ ।
महाबाहु ! कारण कहे पाँच सुनहु तुम सोइ ॥ १३ ॥

13. Now causes five, O mighty-arm'd!,
Learn thou of Me, as Sankhya declares,
For the accomplishment of all
The actions which a man performs.

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥१४॥

देह जीव इन्द्रिय सकल पृथक पृथक जो आहिं ।
विविधि भांति चेष्टा बहुरि पञ्चम दैव कहाहिं ॥ १४ ॥

14. The body and the actor, too,
The various organs, energies,
And gods that over these preside,
These are the fivefold entities.

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥१५॥

तन मन वाणी तें मनुज कार्य अरम्भै जौन ।
न्याय होइ अन्याय वा पाँच हेतु यहि तौन ॥ १५ ॥

15. Whatever act a man performs,
By body, speech, or by the mind,
Whether that act be right or wrong,
The above five its causes are.

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

जो दुर्मति अविवेकवश ऐसि अवस्था माहिं ।
आत्महिकों कर्त्ता लखत सो कछु देखत नाहिं ॥ १६ ॥

16. That being so, who verily,
Owing to lack of knowledge true,
Looketh on self as doer of things,
Dull-headed, he perceiveth not.

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबद्ध्यते ॥१७॥

जासु अहंकृत भाव नहिं बुद्धि लिप्त नहिं होइ ।
इन लोकनकों मारि हू मारै बँधै न सोइ ॥ १७ ॥

17. But who is free from egoism,
Whose Reason is affected not,
Though he may slay these peoples all,
He slayeth not, nor is he bound.

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता त्रिविध कर्म प्रेरणा जान ।
कर्मन के संग्रह करन कर्त्ता कर्महि मान ॥ १८ ॥

18. Knowledge, the knower, what to know,
These three impulse to action are,
The organ, action, actor, third,
These three are elements of deed.

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणुतान्यपि ॥१६॥

ज्ञान कर्म कर्त्ता गनिय गुण के तीन प्रकार ।
सांख्यशास्त्र जो कहत है, तापर करहु विचार ॥ १९ ॥

19. Knowledge and act and actor, too,
According to their nature's moods,
Fall into three classes distinct,
Now hear thou duly these from Me.

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ॥२०॥

भिन्न सकल भूतन विषें भाव अभिन्न विकास ।
जासों देखत जान तिह सात्विक ज्ञानप्रकास ॥ २० ॥

20. That by which the Immortal One
Is seen as seated in all things,
The Partless midst divided ones,
Know thou that knowledge to be pure.

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नाना भावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

भिन्न भिन्न जानत सकल भतन में जो भाव ।
सोइ ज्ञान कुन्तीतनय ! राजसज्ञान कहाव ॥ २१ ॥

21. But knowledge which regardeth, Parth,
As separate all living things,
And counts all beings one by one,
That knowledge is of passion born,

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

जब जन एकहि कार्य में पूर्ण समुभि फँस जात ।
अल्प अहैतुक ज्ञान सोइ तामसज्ञान कहात ॥ २२ ॥

22. While that which clings to one thing, Parth,
As if it were the all in all,
Bereft of reason, narrow, vain,
Suck knowledge is of darkness born.

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥

फलवांछा तजि सङ्गबिनु राग द्वेष बिसराइ ।
नित्यकर्म जो नर करै सो सात्त्विक कहलाइ ॥ २३ ॥

23. An action which is done, O Parth !
By one desirous not of fruit,
Free form attachment, love or hate,
That action is regarded pure.

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥

जामें फलइच्छा रहै अहंकारयुत जोइ।
कियो जाइ श्रम अमित सों राजस कारज सोइ ॥ २४ ॥

24. But action which is done by one
Who longs for fruit of what he does,
With egoism or much effort,
That is regarded passion-born.

अनुबंधं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥

बिना बिचारै हानि अरु बल हिंसा परिणाम।
कियो कर्म जो मोहतें तामस ताकौ नाम ॥ २५ ॥

25. All actions, on delusion based,
Without regard to consequence,
Without regard to loss or harm,
Suck acts from darkness surely spring.

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते २६

मुक्तसंग ममतारहित धीर उद्यमी जोइ।
निर्विकार सिधि असिधि में कर्त्ता सात्त्विक होइ ॥ २६ ॥

26. Free from attachment, ego-less,
Endued with strength and confidence,
Unchanged by failure or success,
Such actor is regarded pure.

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥

रागी लुब्धक कर्मफल इच्छुक हिंसक जोइ ।
हर्षशोकयुत अशुचि पुनि कर्त्ता राजस सोइ ॥ २७ ॥

27. Impassion'd, wishing action's fruit,
Greedy and harmful and impure,
E'er influenced by joy and grief,
Such actor is call'd passionate.

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥

कपटी हठी अयुक्त शठ परपीड़क अलसान ।
कार्यविलम्बी मुदरहित कर्त्ता तामस जान ॥ २८ ॥

28. Discordant, vulgar, and stubborn,
Cheating, malicious, indolent,
Despairful, ever putting off,
Such actor is regarded dark.

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥२९॥

भिन्न गुणन तें भेद जो बुद्धि धृती के पार्थ ।
सो अब वर्णन करत हों जानौं तिनहिं यथार्थ ॥ २९ ॥

29. Reason and Firmness also are
Threefold, owing to qualities,
Hear thou from Me, Winner of Wealth!
As I describe them one by one.

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बंधं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥३०॥

बंध मोक्ष अरु भय अभय कार्य अकार्यहु जान ।
प्रवृति निवृति जो बुधि गनै ताको सात्त्विक मान ॥ ३० ॥

30. Reason which knoweth energy,
Abstinence, fit and unfit act,
Fear, restraint and fearlessness,
And freedom, too, is surely pure.

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥

जातें धर्म अधर्म को कार्य अकार्यहु कोइ ।
विधिपूर्वक जानत नहीं राजस बुधि है सोइ ॥ ३१ ॥

31. That by which one doth understand
Awry the right and wrongful acts,
And also what is fit, unfit,
That Reason's passionate, O Parth!

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२

जो अधर्मको धर्म गनि मोहग्रस्त ह्वै जात ।
सब अर्थनि उलटे गिनै तामसबुद्धि कहात ॥ ३२ ॥

32. That which, enwrapp'd in darkness dire,
Thinketh a wrongful act as right,
And seeth all things upside down,
That Reason is of darkness born.

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सापार्थ सात्त्विकी॥३३॥

जा थिर धृति सों रखत नर मन इन्द्रिय अरु प्रान ।
सावधान ब्यापार में सो धृति सात्त्विक जान ॥ ३३ ॥

33. The steady firmness by which one,
Seated in Yog, restrains the mind,
Controllling life-breath and the sense,
That firmness is regarded pure.

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥

हे अर्जुन ! जामें रहैं धर्म अर्थ अरु चाह ।
फल की इच्छा हू प्रबल राजस जानो ताह ॥ ३४ ॥

34. But firmness by which, Arjuna,
One holdeth fast to duty here,
Desiring fruit of action done,
That firmness psssionate is termed.

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥३५॥

स्वप्न शोक भय दुःख मद नहिं त्यागत है जोइ ।
दुर्मेधा धृति तामसी पार्थ कहावत सोइ ॥ ३५ ॥

35. That by which one, from stupid mood,
Doth not abandon sleep or fear,
Grief and despair and also pride,
That firmness, Pritha's son, is dark.

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥३६॥

सुख हू तीन प्रकार कौ सुनु पारथ ! चितलाइ ।
जामे रमि अभ्यास तें अन्त दुखन कौ पाइ ॥ ३६ ॥

36. And now I would declare to thee,
Three kinds of pleasure, Bharat's son!
That by which one rejoiceth here,
And which putteth an end to pain.

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

जो विषसम है आदि में अन्तिम अमृत समान ।
आत्मबुद्धि कों सुखद जो सात्त्विक सुख सोइ जान ॥ ३७ ॥

37. That which at first is venom-like,
But at the end like nectar sweet,
Born of the knowledge of the Self,
That pleasure is regarded pure.

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

विषयेन्द्रिय संजोग तें पहिले अमृत समान ।
जो विषसम है अन्त में सो सुख राजस जान ॥ ३८ ॥

38. That which from union of the sense,
At first as nectar seems to be,
But in the end is venom-like,
That pleasure's passionate, indeed.

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

आदि अन्त में मोह बिच फाँसत मन कों जोइ।
निद्रालस्य प्रमाद तें सुख तामस है सोइ ॥ ३९ ॥

39. That pleasure which is both at first
And afterwards delusive, here,
Grounded in sleep and indolence,
That is regarded to be dark.

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

पृथ्वीतल आकाश में देवन हूँ के माहिं।
थावर जंगम सृष्टि में त्रिगुणरहित, कोउ नाहिं ॥ ४० ॥

40. And there is not an entity,
Either on earth or heaven above,
Among mankind or Shining Ones,
Exempt from these three qualities.

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अरु शूद्रनके जो कर्म।
स्वाभाविक गुणतें बटे जानहु तिनको मर्म ॥ ४१ ॥

41. Of Brahmans and of Kshatriyas,
Of Vaishyas and of Shudras, too,
The duties have all been defin'd,
According to these qualitics.

शमो दमस्तपः शौचं शांतिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥

शौच क्षमा तप दम शमन आर्जव अरु विज्ञान ।
पूर्णास्तिक्य स्वभाव ये ब्रह्म कर्म पहिचान ॥ ४२ ॥

42. Serenity and self-restraint,
Penance, forgiveness, purity,
Uprightness, wisdom, sacred lore,
And faith are duties Brahman's own.

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥४३॥

शौर्य तेज धृति दक्षता रण-अपलायन दान ।
ईश्वरभाव स्वभाव तें क्षात्र कर्म पहिचान ॥ ४३ ॥

43. Prowess and splendour, firmness, too,
Dexterity, and open hand,
Not flying from the battle-field,
Are Kshatri duties nature-born.

कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४॥

कृषि गोरक्षा बंज हैं वैश्य स्वभावज कर्म ।
पार्थ ! स्वभावज शूद्र कौ सेवा ही इक धर्म ॥ ४४ ॥

44. Ploughing, protection of the kine,
And trade are Vaishya duties call'd;
While service of the other three
Is Shudra's duty nature-born.

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥४५॥

आपन आपन कर्ममें तत्पर हुइ नर तात ! ।
जा विधि पावै सफलता सोइ सुनावत बात ॥ ४५ ॥

45. Man reacheth full perfection here
By doing duty nature-born,
Listen now how perfection's gain'd,
By one who duty well performs.

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥४६॥

भूतसृष्टि जातें भई जातें यहि जग व्याप्त ।
ताहि पूजि निज कर्म तें सिद्धि लहत है आप्त ॥ ४६ ॥

46. He Who is source of living things,
By Whom all this pervaded is,
His worship with one's duty join'd
Secures a man perfection here,

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥

भले किये परधर्मतें श्रेष्ठ विकृत निज धर्म ।
पाप लगै नहिं ताहि जो करै स्वभावज कर्म ॥ ४७ ॥

47. Better one's duty meritless,
Than other's, tho' accomplish'd well,
He, who performs his duty here,
Incurs no sin, O Pritha's son !

सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता: ॥४८॥

सहजकर्म कों पाराडुसुत ! तजै सदोषहुँ नाहिं ।
सर्वारम्भनि दोष जिमि धूम अगिनि में आहिं ॥ ४८ ॥

48. Duty congenital, O Parth !
Tho' faulty, shouldn't be given up;
All undertakings are, indeed,
Clouded by faults, as smoky fire.

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

जो पारथ ! अनुरागबिनु इन्द्रियजित निष्काम ।
वह द्वारा संन्यास के पावत है परधाम ॥ ४९ ॥

49. Whose Reason is attachment-free,
The Self subdued, desires at rest,
He, by Renunciation, gains
Freedom from obligation here.

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

सिद्धिप्राप्ति करि तात पुनि ब्रह्मप्राप्ति जिमि होइ ।
परम अवस्था ज्ञान की संक्षेपहि सुनु सोइ ॥ ५० ॥

50. How he, who hath perfection gain'd,
Obtaineth the Eternal Brahm,
That highest state of Wisdom rare,
Learn thou from Me, O Kunti's son !

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१

मन को बश करि धैर्य सों शुद्धि बुद्धि सों युक्त ।
शब्दादिक सब विषय तजि राग द्वेष सों मुक्त ॥ ५१ ॥

51. United to the Reason pure,
Controlling Self by firm resolve,
Aband'ning all objects of sense,
Laying aside both love and hate;

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥

लघुभोजी एकान्त बसि नियमित मन वच काय ।
नित आश्रित बैराग्य पर ध्यानयोगमें जाय ॥ ५२ ॥

52. Residing in a lonely place,
In body, speech and mind restrain'd,
On meditation firmly bent,
Taking refuge in unconcern;

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

अहंकार अरु काम बल दर्प परिग्रह कोह ।
त्यागि शान्त निर्मम मनुज होइ ब्रह्मसंदोह ॥ ५३ ॥

53. Casting aside all egoism,
All arrogance, desire and wrath,
Exempt from greed, selfless and calm,
This is the way to Goal Supreme.

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

ब्रह्मरूप हुइ मुदितमन जाकों शोक न आस ।
सब भूतनकों सम लखत परम भक्ति है तास ॥ ५४ ॥

54. Transform'd to Brahm, serene in Self,
He neither grieveth nor desires;
Regarding all the living things,
Devotion unto Me he gains.

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ॥५५॥

जैसो अरु जो मैं अहों मोइ भक्तिसों जान ।
परमतत्व मम जानिकै मोसों होत मिलान ॥ ५५ ॥

55. Through love he comes to know Myself,
Knows who and what in truth I am;
Having thus known Me in essence,
He forthwith reaches Goal Supreme.

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

सब कर्मन कों करत हू मोहीमें चित देउ ।
मोर कृपा तें पाण्डुसुत ! अविनाशी पद लेउ ॥ ५६ ॥

56. Tho' doing ever actions all,
He takes refuge in Me, O Parth !
And by My grace he doth obtain
Eternal, changeless state of Mine.

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततंभव ॥५७॥

मत्पर हुइ करि कर्म सब चितसों अर्पण मोइ ।
बुद्धियोग कों पाइ नित यतचित मोमें होइ ॥ ५७ ॥

57. Renouncing mentally to Me
All works, with Me as final goal,
In Yog of Discrimination vers'd,
Have thou thy thought e'er fix'd on Me.

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥५८॥

मोमें चित्त लगाइकै तरिहौ सब कठिनाइ ।
जो नहिं सुनहु घमण्डतें सर्वनाश हुइ जाइ ॥ ५८ ॥

58. Thinking on Me thou shalt surmount
All obstacles by Grace of Mine,
But if from egoism thou wilt
Not listen, thou shalt come to grief.

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥५९॥

समुझि रह्यौ जो "नहिं लडूँ" अहंकार चितलाइ ।
मिथ्या तब व्यवसाइ है तोकों प्रकृति लड़ाइ ॥ ५९ ॥

59. Entrench'd in egoism thou think'st
"In battle I will not engage";
But purposeless is thy resolve,
For Nature will constrain thee, Parth !

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥६०॥

मोहविवश तू नहिं करन चाहत अर्जुन! जोइ।
स्वाभाविक निज कर्म बँधि अवश करैगो सोइ॥६०॥

60. Bound by thy duty, nature-born,
Thou shalt be forced to do, Kauntey,
Which, from delusion, at this time,
Thou thinkest thou oughtst not to do.

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥६१॥

सबभूतन के हृदय बिच ईश रहत है जोइ।
मायातैं पुतरी सरिस सबहि नचावत सोइ॥६१॥

61. The Lord who dwelleth in the hearts
Of living things, O Arjuna!
The Same whirls all by Mystic Pow'r,
As mounted on a potter's wheel.

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परांशांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥६२

सर्वभाव तें भरतवर! ताकी शरणहि जाउ।
तासु कृपा तें शान्ति पर शाश्वत पद कों पाउ॥६२॥

62. Flee unto Him for shelter thou,
With all thy might, O Bharat's son!
And by His Grace thou shalt obtain
Supreme abode and lasting bliss.

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

ज्ञान गुप्त तें गुप्तहू मैंने दियौ बताइ ।
भल विचारि अब कीजिये यथा योग्य व्यवसाइ ॥ ६३ ॥

63. Thus have I unto thee declared
This secret great, Wisdom's essence,
Having reflected on it full,
Act thou as thou likest, O Prince !

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ॥
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

गोपनीय कुन्तीतनय ! अति गभीर वच मोर ।
फिरहू सुनु मम मित्र है करनचहों हित तोर ॥ ६४ ॥

64. Listen thou once again to Me,
To this My Word Supreme, O Parth !
This sovereign secret I bestow
On thee, My darling, and comrade.

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥

नमस्कार करि पूज मोहि मोमें ध्यान लगाइ ।
सत्यव्रत पुनि भक्त हुइ प्रिय मोमें मिल जाइ ॥ ६५ ॥

65. Merge thou thy mind in Me, devote
Thyself to Me, make sacrifice,
Prostrate thyself, and thou shalt come
To Me, My darling, trust My word.

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

सब धर्मनकों त्यागिकै एक मोइ गहु आइ ।
मत सौचै सब पापतें लैहौं तोइ छुड़ाइ ॥ ६६ ॥

66. Abandoning all other paths,
Come unto Me, and shelter seek;
I'll set thee free from all thy sins;
Yield not thyself to sorrow, then.

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥

जो अभक्त श्रद्धारहित और तपस्याहीन !
नाहिं बतावन ज्ञान यहि जाकौ हृदय मलीन ॥ ६७ ॥

67. This secret thou shouldst not reveal
To one who is without penance,
To one without devotion, too,
Nor yet to him who Me reviles.

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

जो मम भक्तनतें कहै परम गुप्त यहि ज्ञान ।
सो मेरी दृढ़ भक्ति तें मोकों मिलिहै आन ॥ ६८ ॥

68. But he who, this Secret Supreme
To devotees of Mine declares,
Paying due homage unto Me,
He shall approach Me without doubt.

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

तासों प्रियतर अधिक कोउ मोर नाहिं जगमाहिं।
भयौ नाहिं अब हू न है फिरहु होइगौ नाहिं ॥ ६९ ॥

69. Nor is there one among mankind,
Who better service does to Me,
Nor any other shall be more
Belov'd by Me on earth, O Prince!

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥

हमरे शुचि संवाद कों पढ़ै जु चित्त लगाइ।
ज्ञानयज्ञफल पार्थ! सो मम पूजन लें पाइ ॥ ७० ॥

70. And whoso will study full well
This sacred dialogue of ours,
By him I shall be worshipp'd well,
With Sacrifice of Wisdom, here.

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

अनसूयक श्रद्धासहित जो नर सुनि है याहि।
मुक्त होइ सो अरु मिलै पुण्यलोक हू ताहि ॥ ७१ ॥

71. The man also, who, full of faith,
Listens to it, with heart devout,
E'en he, exempt from ills of life,
Obtaineth radiant worlds beyond.

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

कहा पार्थ! तैनैं सुन्यौ चित लगाइ यहि ज्ञान ?
कहा सकल तेरौ नस्यौ यातें भ्रम अज्ञान ? ॥ ७२ ॥

72. Hath this been heard, O Pritha's son !,
By thee with mind intently fix'd,
Has thy delusion error-born
Left thee, O Conqueror of Wealth ?

अर्जुन उवाच—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

अर्जुन ने कहा ।

स्मृति लहि तव कृपातें मोह नस्यौ प्रभु मोर ।
थित हों मैं सन्देहबिनु करिहों आज्ञा तोर ॥ ७३ ॥

Arjuna said:—

73. "Destroy'd my delusion is,
And Knowledge gain'd, thro' Grace of Thine,
And I am firm, my doubts have fled,
And I will do as Thou dost bid".

संजय उवाच—

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

संजय ने कहा ।

राजन् ! या विधि मैं सुन्यौ कृष्णार्जुन संवाद ।
अद्भुत अरु रोमाञ्चकर दाता भूरि प्रसाद ॥ ७४ ॥

Sanjaya said:—

74. I heard this marvellous discourse,
Of Vasudev and Pritha's son,
Which, full of wonder, as it is,
Causeth my hair to stand on end.

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

व्यासकृपातें मैं सुन्यौ गोपनीय यहि ज्ञान ।
योगेश्वर श्रीकृष्ण ने निजमुख कियौ बखान ॥ ७५ ॥

75. Through Vyasa's favour, King of men !
I listen'd to this secret Yog,
From Krishna, Lord of Yog Himself,
By His own lips divine proclaim'd.

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥

शुचि अद्भुत संवाद यहि केशव अर्जुन केर ।
बार बार सुमिरन करत नृपति ! लहौं मुदढेर ॥ ७६ ॥

76. When I remember, Lord of men !
That holy, marvellous discourse
Of Keshav with Prince Arjun, I
Rejoice again and yet again;

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः॥७७॥

सुमिरि सुमिरि श्रीकृष्णके अद्भुत रूप अपार ।
होत मोइ विस्मय अमित हर्षहु बारंबार ॥ ७७ ॥

77. Remembering, remembering
That awful form of Hari, too,
Great is my wonder, Lord, and I
Rejoice again, again, again.

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

जहँ योगेश्वर कृष्ण हैं जहँ अर्जुन धनुधारि।
भूति विजय श्री नीति तहँ यहि मति नृपति हमारि ॥ ७८ ॥

78. Where'er is Krishna, Yoga's Lord,
Where'er is Arjun, Archer great,
There shall abide for evermore,
Fortune, Success and Righteousness.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यास-योगोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

——::※::——

इति मोक्षसंन्यासयोगोनाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
ओ३म् तत् सत्

——::※::——

Here Endeth The Eighteenth Discourse
Entitled
LIBERATION BY RENUNCIATION.
AUM! TAT!! SAT!!!

——::※::——

❀ ओ३म् ❀

पुस्तक मिलने के पते:—

१

स्वामी तुलसीराम मिश्र एम० ए०,

सेवासदन गणेशगंज, लखनऊ।

२

पण्डित विश्वम्भरनाथ मिश्र,

नौवस्ता, आगरा